प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी चेतना
PRAYOGAVADI KAVITHA MEM VYAKTHIVADI CHETHANA

THESIS SUBMITTED TO
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

LILLY P. A.

Prof and Head of the Dept.
Dr. M. EASWARI

Supervising Teacher
Dr. M. SHANMUGHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 022

MARCH 1997

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled **"PRAYOGAVADI KAVITHA MEM VYAKTHIVADI CHETHANA"** is a bonafide record of work carried out by Lilly P.A. under my supervision for Ph.D. and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology

Kochi - 22

26 - 03 - 1997

Dr. M. Shanmughan
(Supervising Teacher)

DECLARATION

I hereby declare that this thesis entitled **"PRAYOGAVADI KAVITHA MEM VYAKTHIVADI CHETHANA"** is an original work carried out by me under the supervision of Dr. M. Shanmughan, Reader, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology. I also declare that no part of this work has hitherto been submitted for a degree in any University

Kochi - 22

26 - 03 - 1997

LILLY P.A.

प्राक्कथन

व्यक्ति को समाज की अपेक्षा ज़्यादातर महत्व देनेवाला दर्शन है व्यक्तिवाद । प्रयोगवादी कवियों ने इस दर्शन का समर्थन किया है । इस काव्यधारा की मुख्य प्रवृत्ति व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा है । व्यक्ति एक सम्पूर्ण इकाई है और उसकी अलग पहचान भी हैं । लेकिन समाज में उसकी अस्मिता को उचित स्थान नहीं मिलता । प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति की इस खोई हुई अस्मिता की तलाश करके व्यक्ति को प्रमुख स्थान देने का प्रयास किया है । समाज को नींव में खड़े होकर और समाजोन्मुख बनकर व्यक्ति बहुत कुछ कर सकता है । व्यक्ति महिमा और उसकी अनन्त संभावनाओं पर बल देते हुए व्यक्ति की गरिमा को प्रश्रय देना ही प्रयोगवाद का मकसद रहा है ।

प्रयोगवादी काव्य व्यक्ति चेतना का काव्य है । आधुनिक युग की यांत्रिकता में व्यक्ति अक्सर अकेला ही है । उसका अस्तित्व निरन्तर चूर चूर होने की स्थिति में है । औद्योगीकरण की सभ्यता के चंगुल में फँसकर व्यक्ति अपने अस्तित्वसंकट की व्यथा को संजोते हुए इधर उधर भटकता रहता है । समाज की इकाई होने पर भी वह अपनी अलग पहचान के लिए निरन्तर तरस रहा है । उसके हृदय का स्पन्दन विभिन्न प्रकार के मूर्त रूप हासिल कराने के लिए बेचैन है । यही बेचैनी रचना का माध्यम लेने को विवश हो जाती है । प्रयोगवादी कवि उक्त व्यक्ति का

प्रतिनिधित्व करता है । भारतीय युद्धोत्तरकालीन परिवेश के प्रति प्रयोगवादी कवियों ने सजगता व्यक्त की है । उनकी काव्य प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से व्यक्तिपरक हैं । पश्चिमी व्यक्तिवाद और व्यक्तिवाद का सर्वोच्च रूप अस्तित्ववाद का गहरा प्रभाव इस काव्यरचना पर पड़ा है । व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा, अहंवाद, क्षणवाद, बौद्धिकता आदि इसकी काव्यगत और व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ हैं । तत्कालीन भारतीय परिवेश में पले व्यक्ति मानव की वेदना, निराशा, अनास्था, व्यथा के साथ मृत्युबोध को भी उन्होंने कविता का विषय बनाया है । शिल्प विधान के क्षेत्र में इन कवियों ने कमाल हासिल कर दिया है । आधुनिक कविता की आरंभकालीन स्थूलता से हटकर सूक्ष्मतम भावों की भी अभिव्यक्ति प्रयोगवादी काव्य में हुई है । परंपरा एवं रूढ़ियों को तोड़कर शब्दों को काव्यानुकूल सजाने संवारने का महत्वपूर्ण कार्य इस काव्यरचना में सम्पन्न हुआ है । व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियों का भी उद्घाटन करके उसकी यौन वर्जनाओं की अभिव्यक्ति करने में भी प्रयोगवादी कवि सक्षम रहे हैं । यों प्रयोगवादी कविता पूर्ववर्ती कविता से अपनी अलग हैसियत दर्शाने में भी कामयाब रही है ।

इस शोध प्रबन्ध को मैं ने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है - प्रथम अध्याय में व्यक्तिवाद का तात्त्विक विवेचन पाश्चात्य दार्शनिकों के सिद्धांतों के आधार पर किया है ।

पूर्वप्रगतिवादी युग में व्यक्तिवादी चेतना की झलक को दूसरे अध्याय में प्रतिपादित करने की कोशिश हुई हैं ।

तीसरे अध्याय में प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिचेतना की प्रवृत्तियों का विस्तार से उल्लेख हुआ है ।

प्रयोगवादी कविता के शिल्पपक्ष का अनुशीलन चौथे अध्याय में हुआ है ।

इस शोध प्रबन्ध के पाँचवें अध्याय का विषय प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी चेतना का मूल्यांकन है ।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का कार्यान्वय कोचीन विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर, डा.एम.षण्मुखन के विद्वतापूर्ण निर्देशन से संपन्न हुआ है । विषय चुनाव से लेकर इसकी प्रस्तुति तक उनको निरन्तर प्रेरणा, समयानुकूल निर्देशन तथा प्रोत्साहन इसकी पूर्ति में विशेष रूप से सहायक रहे हैं । उनके प्रति मैं इस अवसर पर कृतज्ञता ज्ञापित कर रही हूँ ।

इस विभाग की अध्यक्षा डा.एम.ईश्वरी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । उनके महत्वपूर्ण सहयोग एवं प्रोत्साहन मुझे समय समय पर मिला है ।

इस शोध प्रबन्ध को तैयार करने में मेरे शोधविशेषज्ञ डा. एस. शाहजहाँ जी ने जो दिशा निर्देशन किया है उनके लिए भी मैं आभारी हूँ ।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति मैं बेहद कृतज्ञता ज्ञापित करना चाहती हूँ क्योंकि उनकी आर्थिक सहायता के कारण यह शोधकार्य संपन्न हुआ है । कोचीन विश्वविद्यालय तथा भारतमाता कॉलिज, तृक्काक्करा के अधिकारियों के प्रति भी मैं एहसानमन्द हूँ जिन्होंने शोधकार्य करने का अवसर प्रदान कर कृतार्थ किया है ।

विभाग के अन्य गुरूजनों, पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती सी. पी. बेबि वत्सला तथा सहायक श्री. पी. ओ. आन्टणी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । पुस्तकालय की भूतपूर्व अध्यक्षा श्रीमती कुञ्जिकावुकुट्टी तंपुरान के प्रति भी मेरा आभार असीम है ।

इस शोध कार्य को संपन्न करने में जिन शोध छात्रों और कर्मचारियों ने मेरी मदद की है उनके प्रति भी मैं विशेष आभारी हूँ ।

लिल्ली. पी. ए.
हिन्दी विभाग
भारत माता कॉलिज
तृक्काक्करा.

कोचीन तकनीकी व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय
कोचीन - 682022.

दिनांक 26. 03. 1997.

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1 - 46

व्यक्तिवाद तात्विक विवेचन

व्यक्ति - समाज - व्यक्ति और समाज का संबन्ध - व्यक्तिवाद परिभाषा - व्यक्तिवाद - एक दर्शन के संदर्भ में - व्यक्तिवाद के विविध आयाम - राजनैतिक व्यक्तिवाद - आर्थिक व्यक्तिवाद - धार्मिक व्यक्तिवाद - अस्तित्ववाद - उद्भव - पृष्ठभूमि - अस्तित्ववादी विचारधारा - प्रमुख प्रवर्तक - अस्तित्व - सार और अस्तित्व - व्यक्ति की स्वतंत्रता - अस्तित्व-वादी दर्शन के संघटक तत्व - मृत्युबोध संत्रास विसंगति - क्षण की महत्ता व्यक्तिवाद - उद्भव - विकास - विद्रोही भावना और निषेध का स्वर - क्रान्तियों का समाज पर प्रभाव - औद्योगिक क्रान्ति - परिणाम - सामन्तवाद का विघटन और पूँजीवाद का उदय ।

दूसरा अध्याय 47 - 87

पूर्व प्रयोगवादी युग की कविता में व्यक्तिवादी चेतना का स्वरूप

भारतेन्दु युग - द्विवेदी युग - छायावाद - प्रसाद - निराला - पंत - महादेवी वर्मा - छायावादोत्तर काल -

पृष्ठ संख्या

हरिवंश राय बच्चन - नरेन्द्र शर्मा - रामेश्वर
शुक्ल अंचल ।

तीसरा अध्याय 88 - 165

प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी चेतना

भारतीय परिवेश - राजनीतिक परिस्थितियाँ -
सामाजिक परिस्थितियाँ - आर्थिक परिवेश -
औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव - प्रयोगवाद - प्रयोगवाद
के प्रमुख कवि - व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा - अहंवाद -
क्षणवाद - बौद्धिकता - निराशा - अनास्था - घुटन -
कुण्ठा - पीडा और पराजय की भावना का चित्रण ।

चौथा अध्याय 166 - 222

प्रयोगवादी कविता का शिल्प

प्रयोगवादी कविता की भाषा - नये शब्दों का
प्रयोग - संस्कृतनिष्ठ भाषा-शैली का प्रयोग -
उर्दू फारसी शब्दों का प्रयोग - अंग्रेज़ी शब्दों का
प्रयोग - लोकजीवन से प्राप्त शब्दावली -
मनगढंत शब्दों का प्रयोग - अलंकार विधान -
अप्रस्तुत योजना - मानवीकरण - विशेषणविपर्यक -

पृष्ठ संख्या

प्रतीक योजना - बिम्ब योजना - छन्द योजना - मुक्तासंग - अनुक्रमिक भावना प्रवाह - प्रसंगगर्भत्व - व्यंग्यात्मकता ।

पाँचवाँ अध्याय 223 - 231

उपसंहार - प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी चेतना - मूल्यांकन

सहायक ग्रंथ सूची 232 - 248

पहला अध्याय

व्यक्तिवाद - तात्त्विक विवेचन

जब से मानव समाज के रूप में रहने लगा और उसमें चिन्तन शक्ति आविर्भूत हुई तब से उसने समाज में अपने अलग अस्तित्व और हैसियत के संबंध में गहराई से विचार किया है । समाज के साथ अपने सरोकारों के प्रति भी वह सचेत रहा है । ग्रीस और यूरोप के इतिहास की जाँच करने से यह पता चलता है कि कभी व्यष्टि को और कभी समष्टि को महत्व देते हुए मानव आगे बढ़ा है । पुराने ग्रीस के एपिक्यूरियन चिन्तकों ने व्यक्तिसुख और आनन्द को प्रमुखता दी थी । एथन्स में व्यक्तिस्वातंत्र्य पर आधारित जनतंत्र को प्रतिष्ठा मिली थी । सदियों से दार्शनिक क्षेत्र में यह सवाल बरकरार रहा है कि व्यक्ति को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में मान्यता देना युक्तिसंगत है या नहीं । इसी सिलसिले में व्यक्ति को समाज की अपेक्षा वरीयता एवं श्रेष्ठता प्रदान करनेवाले व्यक्तिवादी दर्शन का रूपायन हुआ था ।

इस संदर्भ में व्यक्तिवादी दर्शन के समग्र विश्लेषण के पहले व्यक्ति और समाज तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का बारीकी से विश्लेषण अत्यन्त ज़रूरी है और लाजिमी भी ।

व्यक्ति :-

व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है । समाज ही उसका परवरिश करता है । व्यक्ति को अपने विकास की प्रेरणा समाज से ही मिलती है । समाज की ओर से इतना कुछ होने के बावजूद भी व्यक्ति का अपना अलग अस्तित्व है । उसकी अस्मिता एक स्वतंत्र सत्य है । ऐसे व्यक्तियों से ही समाज का निर्माण हो सकता है जो बिलकुल स्वतंत्र है ।[1] अतः व्यक्ति की स्वतंत्रता अनिवार्य

---

1. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश भाग - 1 - पृ. 807

रूप से समाज के लिए श्रेयस्कर और अपेक्षित है । व्यक्ति स्वातंत्र्य की आवश्यकता पर टिप्पणी करते हुए थामस होब्बस ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी शक्ति को निजी इच्छाओं के विकास के लिए या राजनीतिक कार्यों के लिए इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र है अथवा ऐसा करने के लिए उसे अधिकार है ।[1] व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के स्वतंत्र विकास के लिए उचित परिश्रम कर सकता है । फिर भी समाज का अंग होने के नाते समाज के नियमों का पालन करने के लिए वह मजबूर है ।

व्यक्ति कभी-कभी आत्मचेतना से उद्विग्न होकर सारे नियमों के परे जाने के लिए तैयार हो जाता है । स्वतंत्रता की साँस लेना अपना अधिकार समझकर सारे नियमों को तोडने का आवेग उसमें पैदा होता है । अपनी भलाई और बुराई का निर्माण व्यक्ति स्वयं कर सकता है । सारे कार्यक्रमों का नियंत्रक एवं जिम्मेदार भी व्यक्ति है ।[2]

---

1. Everyman then is free to use as far as he can, his own power and momentum towards the furthering of his own interests or to express this natural fact in terms of politics, he has a right to do so - Fuller/Mc Murrin - A History of Philosophy- P.51.
2. So too, we alone, not God or necessity, are the causes of our acts. Nor can any external event or person invade our privacy, infringe upon our liberty, or rob us of our happiness. We are the masters of our Fate, immense alike to destiny and chance.
   Fuller/Mc Murrin - A History of Philosophy - P.242

व्यक्ति को अपनी उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न करने का मौलिक अधिकार है । व्यक्ति सुख सुविधाएँ खोज सकता है । वही समाज में ऊँचा पद प्राप्त भी कर सकता है । किन्तु कभी व्यक्ति इन अधिकारों को प्राप्त करने में असफल हो जाता है क्योंकि वह समाज के बन्धनों से जकडा हुआ है । पर सबल मनुष्य को वैयक्तिक स्वतंत्रता को जकडनेवाले समस्त नियंत्रणों और नीतियों के परे जाना है ।[1] संक्षेप में सबल मनुष्य को लीक से परे जाना है तभी वह स्वतंत्रतापूर्वक अपना कार्य करने में कामयाब होता है । स्वतंत्रता की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए रूसो का कथन सार्थक है । वह शासन को मानव के लिए आपत्ति का सूचक समझता है । इस व्यवस्था को दूर करने के लिए जनस्वतंत्रता को अनिवार्य भी मानता है । उसकी दृष्टि में जनता स्वतंत्र है । यानी अपने लक्ष्य की ओर बढने के लिए प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता अनिवार्य है ।[2] यह बात सामान्यत: स्वीकृत हुई है कि जनस्वतंत्रता ही मनुष्य को स्वतंत्र रहने की संभावनायें प्रदान करती है । मनुष्य का विकास समाज का भी विकास है । अत: व्यक्ति को वह जिस समाज में रहता है उस पर विचार विमर्श करना ज़रूरी है ।

समाज :-

मनुष्य का समाज होता है, अन्य प्राणियों में यह विरल है । व्यक्तियों से ही समाज का निर्माण होता है । समाज अनेक वृत्तियों का एक

---

1. Go beyond the reasonable controls of personal liberty and the reactions of excess depredation and disrepute of law are truly appalling - C.K.Allen - K.R.Srinivasa Iyengar- The Adventure of Criticism - P.642.
2. A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.92

मंच है । व्यक्ति के कार्यकलापों पर ही उसका अस्तित्व टिका है ।[1] मनुष्य एकाकी रहकर अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता उसके लिए समाज की ज़रूरत है । यानी साथियों और सहयोगियों के लिए ही नहीं हर चीज़ के लिए उसे अपने पडोसियों पर निर्भर रहना पडता है । इस प्रकार कई लोगों के एक साथ रहने से समाज का ढाँचा बनता है । अत: लोग अन्य लोगों के साथ मिलना चाहते है एक साथ बात करना ही नहीं विचार करना भी चाहते हैं । वे सभी परस्पर सहयोग और सहानुभूति से रहना पसंद करते हैं । ऐसा लगता है कि मिलकर विचार करना, वाद-विवाद करना और एक साथ चलना मानव की सहज आदत है । इस प्रकार एकसाथ मिलकर सोचने बोलने और चलनेवाले सदस्यों की संस्था को ही समाज कहते हैं ।[2]

समाज में ही व्यक्तिचेतना का या समष्टिचेतना का भाव अपना स्थान रख सकता है । व्यक्ति के अभाव में समाज का कोई अस्तित्व नहीं रहता । इस तत्व की पुष्टि करते हुए डॉ॰ माक्लवर कहते हैं कि समाज का अस्तित्व तभी संभव हो सकता है जबकि उसके सारे प्राणी एक दूसरे को मान्यता दे और अच्छा व्यवहार करे ।[3] किसी सार्वजनिक लक्ष्य की ओर अग्रसर करनेवाले कई लोगों की धार्मिक एकता का स्वरूप है समाज ।

---

1. Society is a field of action, but the source of all action is in the individuals composing it - K.R.Srinivasa Iyengar- The Adventure of Criticism - P.643.
2. विद्यामार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति - समाज का कायाकल्प - पृ. ।
3. 'Society' as Dn Maclver says, 'exists only when social beings conduct themselves or behave towards in terms determined by their recognitionship of one another' - Msgr Victor San Mignel O.C.D - Christian Sociology - P.13

समाज व्यक्ति को अच्छा वातावरण प्रदान करता है । उसे आगे बढ़ानेवाला नियामक सत्य भी समाज है । कभी-कभी व्यक्ति वातावरण को अपने अनुकूल बनाता है और कभी उसे अपने को वातावरण के अनुकूल बनाना भी पडता है । समाज में अगर व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का प्रयोग करे तो समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ विरोध या टकराहट हो जाने की संभावना अधिक है । अधिकांश व्यक्ति लडने के लिए तुले हुए हैं ताकि अपना वैयक्तिक अधिकार कोई न छीन ले ।[1]

व्यक्ति और समाज की चर्चा के संदर्भ में हमें इस बात को याद रखना ज़रूरी है कि व्यक्ति अकेला युग निर्माता तक बन सकता है । अकेले आदमी ने ही विचारों में क्रान्ति पैदा की है । इतिहास में अनेक व्यक्ति हैं जो अपने आदर्शों की वजह युगस्रष्टा बने हैं । फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति के पीछे रूसो के विचारों ने ही काम किया था । अपनी रचनाओं के द्वारा जनता को क्रान्ति की ओर उन्मुख करते हुए स्वतंत्रता की भावना एवं क्रान्ति का स्वर सुनाने में वे सफल रहे ।[2]

---

1. In fact, the natural condition of mankind is one in which all men are at war with one another, and thereby find their natural rights curtailed and stultified in part - Fuller/Mc Murrin - Hobbes Politics - A History of Philosophy P.51.
2. He justified revolution against arbitrary rule and was the pioneer to preach the ideals of democracy - A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.95

सुकरात, अरस्तु आदि चिन्तकों के नाम से एथन्स विख्यात हो गया तो जर्मनी हैडेगर, कीर्केगार्ड जैसे अस्तित्ववादियों के ज़रिए प्रसिद्ध हो गया । महात्मा गाँधी ने अपने सिद्धांतों से समस्त भारत को ही नहीं विश्व को भी प्रभावित किया । गौतम बुद्ध के जीवनकाल में ही आधी दुनिया उनके चरणों पर सिर रखी चुकी थी । इस प्रकार उदाहरण अनेक हैं ।

व्यक्ति और समाज का संबंध :-

व्यक्ति और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है । यदि व्यक्ति समाज या समूह का अंग है तो व्यक्तियों के समूह से ही समाज बनता है । एक के अभाव में दूसरे के अस्तित्व की कोई संभावना नहीं है । व्यक्ति और समाज का संबंध इतना सुदृढ है कि एक दूसरे को अलग नहीं किया जा सकता । मानव समाज का आधार व्यक्ति इकाई है । इसलिए व्यक्ति की सत्ता पहले और समाज की बाद में आती है । समाज मानव द्वारा निर्मित मूल्यों की स्वीकृति देता है किन्तु उनकी सृष्टि नहीं कर सकता । उसका लक्ष्य समस्त व्यक्तियों का कल्याण है । समाज मानव द्वारा निर्मित मूल्यों की स्वीकृति देता है किन्तु उनकी सृष्टि नहीं कर सकता । समाज सोच नहीं सकता । सोचने का काम व्यक्ति ही करता है ।[1]

व्यक्ति और समाज के संबंध को लेकर महान वैज्ञानिक आल्बर्ट आइनस्टाइन का विचार बेहद समीचीन है । उनकी मान्यता है कि व्यक्ति एक ओर अकेला प्राणी है साथ ही सामाजिक भी । अकेले होने के नाते वह अपने निकटतम संबंधियों के अस्तित्व की भी सुरक्षा चाहता है । किन्तु सामाजिक

---

1. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 - पृ. 807

होने की वजह से वह अपने सहमानवों की स्वीकृति और मुहब्बत की खोज करता है । उनके जीवन स्तर में वृद्धि कर लेना भी वह अपना कर्तव्य समझता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने इन दोहरे उद्यमों से अपना आंतरिक सन्तुलन बनाये रखने में समर्थ हो जाता है । व्यक्ति के अस्तित्व एवं विकास के अंकन करने में सामाजिक परिस्थितियाँ और परंपरा का भी असर होता है । व्यक्ति अपने शारीरिक बौद्धिक और मानसिक अस्तित्व के प्रति ऋणी है यद्यपि सोचना, अनुभूत करना, परिश्रम करना आदि वह किसी की सहायता के बिना कर सकता है । समाज ही उसे खाना, पीना, कपड़ा, मकान आदि सारी सामग्रियाँ, भाषा और कई प्रकार के चिन्तन भी प्रदान कर लेता है । वर्तमान और अतीत की करोड़ों जनता के अथक श्रम के कारण ही वह छोटा शब्द "समाज" स्थापित हुआ है ।[1]

आइनस्टाइन के विचारों से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति और समाज का निकटतम संबंध है । किन्तु सार्त्र का विचार है कि दूसरों की स्वतंत्रता

1.... The individual is able to think feel strive and work by himself but he depends so much upon society in his physical, intellectual and emotional existence that is is impossible to think of him or to understand him outside the framework of society. It is society which provides man with food, clothing, a home, the tools of work, language, the forms of thought and most of the content of thought, his life is made possible through the labour and the accomplishments of the many millions past and present who are all hidden behind the small word 'Society' - Albert Einstien - Red Star 1946.

व्यक्ति को पराधीन बना देगा । "दूसरों की अतिक्रान्त स्वतंत्रता और अस्तित्व मेरी स्वतंत्रता के राज्य में एक सार्वभौम द्वीप की तरह घुस जाता है जिस पर मेरा कोई शासन नहीं है ।[1] इसके फलस्वरूप व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य आकर्षण और विकर्षण की स्थिति हो जाती है । यानी व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता का अपहरण होता है । "प्रेम करने का मतलब है दूसरों के अनुकूल बनकर अपनी स्वतंत्रता खोना या दूसरे को अपने अनुकूल बनाकर उसकी स्वतंत्रता का अपहरण करना । स्वपीडन या परपीडन - इसके अतिरिक्त प्रेम की अन्य परिणति नहीं ।[2] यानी सामाजिकता के बन्धन में पडने पर व्यक्ति को स्वच्छन्द रूप से विचार करना असंभव हो जाता है । फिर भी व्यक्ति को समाज में रहना ही पडेगा । समाज से पूर्णतः अलग होकर या समाज निरपेक्ष रहकर उसकी हैसियत संभव नहीं है ।

व्यक्तिवाद परिभाषा

व्यक्तिवाद आधुनिक युग का प्रतिष्ठित एवं बहुचर्चित दर्शन है जिसमें समाज की तुलना में व्यक्ति को वरीयता या श्रेष्ठता प्रदान की गयी हैं । हिन्दी में इसका प्रयोग अंग्रेज़ी शब्द "इन्डिविडुवलिज्म" के अर्थ में हुआ है । इसका मूल फ्रॉसीसी शब्द इन्डिविडुवलिज्म (Individualism) है । यह शब्द व्यक्ति के साथ जुडा हुआ है ।[3] आक्सफार्ड डिक्शनरी में व्यक्तिवाद की परिभाषा देते हुए लिखा गया है कि यह वह प्रवृत्ति है जो जीवन में अपने को यानी व्यक्ति के अहं को सर्वाधिक महत्व की चीज़ समझती है । और स्पष्ट करें तो अहंवाद या अहं इसका प्रमुख तत्व है । यह उस सामाजिक सिद्धांत का रूप ले लेता है

---

1. डॉ. लालचन्द गुप्त मंगल - अस्तित्ववाद दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - पृ. 63
2. H.J.Blackham - Six Existentidist Thinkers - P.121
3. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी शब्दकोश भाग -1 - पृ. 807

जो समाज के अधिकारों के स्थान पर व्यक्ति के अधिकारों को विशेष महत्व देता है।[1] पाश्चात्य विद्वानों ने 'व्यक्तिवाद' शब्द का आकलन करते हुए अनेक प्रकार की परिभाषाएँ दी हैं। आर.एस.डेवाने के अनुसार व्यक्तिवाद एक नूतन अभिव्यक्ति है जिसने एक नूतन आदर्श को जन्म दिया है।[2] यह एक प्रकार की मानसिक अवस्था है जिसमें परंपरा या अधिकार को कोई स्थान नहीं दिया जाता। व्यक्तिवादी समाज वही है जिसमें लोग अपने बारे में सोचते हैं और अपने-अपने कार्यक्षेत्र में व्यस्त रहते हैं। अलक्सीस दे टोक्विले ने व्यक्तिवाद को व्यक्तिमानव की स्वार्थभावना से जोड़ा है जो अपने परिवार और दोस्तों के सीमित दायरे में रहती है।[3] स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वार्थ-भावना से अपने सीमित दायरे में रहता है। उसका कार्यक्षेत्र भी परिवार और दोस्तों तक सीमित है।

---

1. Individualism is defined in the Oxford Dictionary as the tendency to regard onself as the paramount interest in one's life, egotism, social doctrine which emphasizes the rights of individual rather than those of society and the State as a whole - Henry Cecilwyld - The Universal Dictionary of the English language - P.599.
2. Individualism is a novel expression to which a novel idea has given birth - R.S.Devane S.J.- The failure of Individualism - P.4.
3. Alexis de Tocquevilla who coined the word described it in terms of a kind of moderate selfishness disposing men to be concerned only with their own small circle of family and friends - Encyclopeadia Britanica - Vol.12 - P.257

व्यक्ति की स्वतंत्रता उसे परंपरागत मूल्यों के विरुद्ध, आवाज़ उठाने को प्रेरित करती है । अतः "लिबरलिज़्म" के अर्थ में भी व्यक्तिवाद[1] का प्रयोग हुआ है । इसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता को शीर्षस्थ स्थान दिया गया है । मार्क्सवेबर ने भी व्यक्तिवाद पर अपना विचार प्रकट किया है कि व्यक्तिवाद में उन भावों की अभिव्यक्ति होती है जो हमारी कल्पना के अतीत है । उन्होंने व्यक्तिवाद की तुलना "अटोमिज़्म" (अणुवाद) से की है ।[2] यानी भौतिक विज्ञान के समानान्तर समाज को स्वसीमित अणुओं का समूह माना गया है ।[3] इस प्रकार उन्होंने व्यक्ति की स्वतंत्रता को ज़्यादातर महत्व दिया है ।

व्यक्तिवादी सिद्धांत के अनुसार एक साधारण मानव का हित तभी संपन्न हो जाता है जब उसे अपने लक्ष्यों और साधनों के चुनाव में पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती है और अपने कर्मक्षेत्र में उसे पूरी जिम्मेदारी और स्वाधीनता हासिल होती है ।

---

1. Individualism is a term somewhat similar in meaning to liberalism. Both concepts place high value in the freedom of the individual - Encyclopeadia Britanica Vol.12 - P.257

2. This expression individualism includes the most heterogeneous things imaginable. An equalant term to Individualism is Atomism - R.S.Devane S.J- The failure of Individualism - P.4.

3. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 - पृ. 808

"इन्डिविडुवलिज़्म" और "इगोटिज़्म" - इन दोनों शब्दों की व्यतिरिक्तता के उन्मीलन से व्यक्तिवाद का मतलब और निखर आएगा । इनका अलग-अलग प्रतिमान है । अंग्रेज़ी में "इन्डिविडुवलिज़्म" का विस्तृत अर्थ होता है । लेकिन "इगोटिज़्म" का संकुचित अर्थ है । "इगोटिज़्म" के अनुसार हर एक व्यक्ति का लक्ष्य अपना प्रत्येक कार्य है । उसका संपूर्ण स्नेह, समूचा लगाव अहम् केन्द्रित है । अति स्वार्थमयी प्रवृत्तियाँ उसकी प्रेरणाशक्ति हैं । परन्तु "इन्डिविडुवलिज़्म" उस मानसिक दृष्टिकोण का सूचक है, जिसके अनुसार व्यक्ति समष्टि से पार्थक्य कर लेता है, किन्तु वह घोर यथार्थवादी मनोवृत्तियों के आवेश में आकर अपने अहं के प्रति संपूर्ण स्नेह और लगाव नहीं रखता ।[1] यानी जनतांत्रिक सिद्धांत के रूप में इसका क्रमिक विकास हुआ है ।

व्यक्तिवादी सिद्धांत के अनुसार एक साधारण मानव का हित तभी संपन्न हो जाता है जब उसे अपने लक्ष्यों और साधनों के चुनाव में पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती है । वास्तव में व्यक्ति को अपने कार्यक्षेत्र में पूरी जिम्मेदारी और स्वाधीनता मिलनी चाहिए । इसके लिए व्यक्ति को स्वतंत्र रहना अनिवार्य है । इससे व्यक्ति अपने लक्ष्य और उस लक्ष्यप्राप्ति के साधनों का चयन भी स्वयं कर सकेगा ।[2] अंग्रेज़ी समीक्षक इयान वाट ने व्यक्ति स्वातंत्र्य के बाधक तत्व के रूप में परंपरा को ठहराया है । — ^ दृष्टि में व्यक्तिवाद व्यक्ति मानव की मूल

---

1. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 - पृ. 807
2. The Individualistic theory of human nature holds that the interests of the normal adult are best served by allowing him maximum freedom and responsibility for choosing his objectives an the means for attaining them, and acting accordingl - Encyclopeadia Britanica Vol.12- P.258

स्वाधीनता पर बल देनेवाला सिद्धांत है, वह परंपरा पर आश्रित असंख्य चिन्तकों और रूढ़ियों की विविध प्रकार की दासता से व्यक्ति की मुक्ति पर बल देता है । कारण यह है कि परंपरा हमेशा समाजसापेक्ष है, व्यक्तिसापेक्ष नहीं ।[1]

व्यक्तिवाद परंपरा को नकारता है और सारे नियंत्रणों को अस्वीकार करता है । राष्ट्र के अधिकारों का भी परम निषेध करना वह चाहता है । इस प्रकार व्यक्तिवाद परंपरागत नियंत्रण और अधिकार का निषेध करता है, विशेषकर राष्ट्र द्वारा आरोपित नियंत्रणों का निषेध ।[2]

उपर्युक्त परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तिवाद एक आदर्शपरक और संस्कारग्रस्त चिन्तन है । इसमें व्यक्ति पर आस्था व्यक्त करते हुए उसकी आंतरिकता पर बल दिया गया है । दरअसल व्यक्ति की स्वतंत्रता ही इसका प्राणतत्व है । यानी व्यक्तिवाद में समष्टि की अपेक्षा व्यक्ति का ज़्यादतर महत्व है ।

---

1. It posits a whole society governed by the idea of every individual's intrinsic independence both from other individuals and from that multifarious allegiance to post modes of thought and action denoted by the word 'tradition' a force that is always social and not individual - Ian Watt - The Rise of the Novel - P.62
2. Negatively it embodies opposition to tradition to authority and to all manner of controls over the individual especially when they are exercised by the state - Encyclopeadia Britanica Vol.12 - P.258

व्यक्तिवाद - एक दर्शन के संदर्भ में

व्यक्तिवाद सिर्फ एक चिन्तन नहीं सचमुच एक समग्र दर्शन है । किसी भी दर्शन का एक लक्ष्य होता है । व्यक्ति की गरिमा की प्रतिष्ठा ही उसका लक्ष्य है । दार्शनिक तो ज्ञान का प्रेमी है । इसलिए दर्शन के माध्यम से अपने ज्ञान की वृद्धि करना भी दार्शनिक का लक्ष्य होता है । व्यक्तिवादी विचार-धारा प्राचीन काल से लेकर मानवजीवन से जुडी रही थी । इसलिए हमें प्राचीन ग्रीक चिन्तकों के दार्शनिक विचारधाराओं पर विचार करना पडेगा । उन चिन्तकों ने मानव की महिमा और उसकी सुखसुविधाओं पर ज़्यादा ज़ोर दिया था ।

ग्रीक राष्ट्रों में विशेषतया एथन्स में नागरिकों की स्वतंत्रता पर ज़्यादा बल दिया जाता था । एथन्स का आदर्श था "स्वतन्त्र राज्य में स्वतन्त्र नागरिक"।[1] थूसीडायडीस [460-400 ई.पू.] द्वारा वर्णित पेरीक्लीज [490-429 ई.पू.] के एक भाषण में सर्वप्रथम व्यक्तिवादी चिन्तन का पता चलता है ।[2] ग्रीक समाज के विघटन के समय भी व्यक्तिवादी मान्यताओं को प्रतिष्ठा मिली । अर्थात् "समाज व्यवस्था और परंपरा से टूटकर भी व्यक्ति अपने अस्तित्व को भली-भाँति निर्वाह कर सकता है ।[3] उसकी आत्मनिर्भरता को निसर्ग सिद्ध मानकर ग्रीक सोफिस्टों ने व्यक्तिवाद की स्थापना की । उन्होंने राज्य को कृत्रिम माना,

---

1. The Athenial ideal might be summed up in a single phase as the conception of the free citizenship in a free state- G.H.Sabine - A History of Political Theory - P.19.

2. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश, भाग-1 - पृ.807

3. वही

साथ ही उसे परंपरा का प्रतीक भी सिद्ध किया । राज्य की परंपरा-शक्ति और व्यक्ति के नैसर्गिक स्वार्थों में मौलिक विरोध है । निसर्ग और परंपरा के मौलिक स्तरों की पृष्ठभूमि में राज्य और व्यक्ति का अन्तर चित्रित किया गया है ।[1]

वास्तव में विद्रोही भावना व्यक्तिवाद की एक प्रमुख विशेषता है । राज्य एवं परंपरा को नगण्य समझकर आत्मनिर्भरता के साथ आगे बढ़ने की क्षमता व्यक्तिवादी चिन्तनधारा की एक प्रमुख नीति है । सोफिस्ट चिन्तकों की इस स्थापना के पहले प्रोटोगोरस ने भी मानव को सारी बातों का केन्द्र माना है ।[2] व्यक्तिवाद की अस्पष्ट झलक इसमें पायी जाती है ।

व्यक्ति महिमा को अत्यधिक महत्व देने में सुकरात का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने परंपराओं की निन्दा की और रूढ़ियों का तिरस्कार किया । अपने स्वतन्त्र विचारों की वजह से सुकरात को मृत्यु का वरण भी करना पड़ा ।[3]

प्लेटो के "रिपब्लिक" में इस तत्व का विस्तार से उल्लेख किया गया था कि समाज को सत्य और यथार्थ मानकर उसकी आपत्ति के कारण व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में ढूँढे गये । समाज तथा राज्य को उन्हीं स्वार्थों की प्राप्ति का एकमात्र साधन बनाया गया ।[4] अरस्तु ने भी व्यष्टि और समष्टि

---

1. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 16
2. Fuller/Mc Murrin - A History of Philosophy - P.103-104
3. Ibid - P.109-110
4. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 - पृ. 808

दोनों को समान महत्व दिया । अतः इन दोनों दार्शनिकों में व्यष्टि और समष्टि की विचारधाराएँ निहित थीं ।

ग्रीक चिन्तकों में स्टोइक और एपीकूरियन दो वर्गों की विचारधाराओं में व्यष्टिवादी एवं समष्टिवादी चेतना का परिचय मिलता है । किन्तु एपीकूरियन वर्ग का प्रतिनिधि एपीकूरियस ‍§341-270 ई.पू.§ व्यक्तिवादी माना जाता है । उनका प्रथम तत्व यह है कि प्रत्येक मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य सुख है और द्वितीय, समाज और राज्य आवश्यक दोष है ।[1] उनकी नजरिया है कि व्यक्ति सुख को भौतिक जीवन का लक्ष्य बनाना है । दरअसल व्यक्तिवाद के प्रथम दार्शनिक के रूप में हम एपीक्यूरियस को मान सकते हैं । किन्तु उसके बाद ईसाई धर्म के प्रचार और प्रसार से दर्शन धर्मसापेक्ष हो गया । लेकिन अम्ब्रोस, थॉमस अक्विनास, अगस्टिन जैसे दार्शनिकों ने मानव के स्वतन्त्र अधिकारों को कोई स्थान अपने दर्शन में नहीं दिया । उनका ध्यान आध्यात्मिक मुक्ति को ओर गया ।[2]

मध्ययुग के दार्शनिकों में फ्रान्सीस बेकन, जॉन लॉक, बर्कले ह्यूम, रीड आदि विद्वान आते हैं । बोसांके भी इस समय के एक प्रसिद्ध दार्शनिक हैं जिनकी विचारधारा के अनुसार जो केवल इन्द्रियसुख और भौतिक चेतना के पीछे पड़ता है वह व्यक्तिवादी है बल्कि जो तर्क और बुद्धि के ज़रिए समष्टि तक प्रसार करनेवाला है वह समष्टिवादी है ।[3] इस समय डेकार्ट और स्पिनोजा की

---

1. धीरेन्द्र वर्मा - हिन्दी साहित्यकोश भाग-1 - पृ.808
2. पं. रमावतार शर्मा - यूरोपीय दर्शन - पृ.50
3. Bernard Bosanquet - History of Aesthetic - P.170

समष्टिवादी विचारधारा के विरुद्ध बेकन ने इन्द्रिय संवेदना को प्रमुखता दी । व्यक्तिवादी चेतना को पुष्टि करने के लिए उसने बुद्धि और अनुभव को महत्व दिया । इन दार्शनिकों के सिवा व्यक्तिमहिमा और व्यक्तिस्वातंत्र्य को सुदृढ़ आधार देनेवाले दार्शनिक एम्मानुवल केन्ट हैं । "क्रिटिक आफ प्यूर रीसन" (शुद्ध ज्ञान की परीक्षा) उनका प्रसिद्ध ग्रंथ है । उन्होंने इन्द्रियसंवेदना के साथ बुद्धि का समन्वय किया । सिर्फ बुद्धि से सबकुछ निकालने का श्रम उनकी दृष्टि में बेकार है ।[1]

संक्षेप में प्राचीन काल से ही व्यक्ति की महिमा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास चलता आया है । दुनिया भर के विचारकों ने व्यक्ति के अस्तित्व पर गहराई से विचार किया और इसलिए व्यक्तिवाद को समग्र दर्शन की हैसियत भी मिल गई ।

व्यक्तिवाद के विविध आयाम

जीवन के कमोबेश सभी क्षेत्रों में व्यक्तिवाद का प्रभाव पडा था । इसकी वजह इसके विविध आयाम है और दिशाएँ भी । आगे हम इन पर विचार करेंगे ।

राजनैतिक व्यक्तिवाद

राजनैतिक क्षेत्र में व्यक्तिवाद का जबरदस्त प्रभाव पडा है । दरअसल इसका संवेदनशील क्षेत्र है राजनीति । इस दर्शन का सीधा संबंध व्यक्ति और शासन के बीच स्वातन्त्र्य की सीमाओं के निर्धारण में स्पष्ट होता है ।

---

1. Fuller/Mc Murrin - A History of Philosophy - P.219-220

व्यक्तिवाद का वैकल्पित नाम स्वेच्छाचारिता है जिसका उद्भव फ्रेंच शब्द लैसेफेयर [Laissez **faire**] है जिसका अर्थ है - "रहने दो" । इसमें किसी तरह का हस्तक्षेप कहीं से न हो विशेषकर शासन की ओर से ।[1] औद्योगिक क्रान्ति के बाद यूरोप की आर्थिक व्यवस्था लैसेफेयर के सिद्धांत पर चलती थी । इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता को सबसे ज़्यादा ज़ोर दिया गया था ।

जान स्टूअर्ट मिल ने "आन लिबेरटी" में व्यक्तिस्वातंत्र्य और व्यक्तिवाद के स्वरूप को स्पष्ट किया । उनके सिद्धांतों का प्राणतत्व व्यक्ति को उचित आदर और महत्व देने में निहित है ।[2] मिल ने यह भी माना है कि राज्य

---

1. Laissez faire, the alternative name by which the traditional theory of Individualism is known, recognises the individual as the centre of all social life and aims to establish that the State should leave him alone to determine his own destiny and the fullest and the free development of his capacities and interests.
   A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.637

2. The central moral idea in Mill's ethics like Kants was really respect for human beings, the sense that they must be treated with a due regard for the dignity that moral responsibility deserves and without which moral responsibility is impossible
   George H Sabine - A History of Political Theory - P.646

केवल नैसर्गिक संस्था नहीं है । उसमें व्यक्ति को पूर्ण सुख मिल सकता है । यदि राज्य इस तरह का सुख नहीं दे सकता तो उसे अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं को कार्य करने की छूट देनी चाहिए ।[1] उनका मत है कि स्वतंत्रता केवल उसी को कहा जा सकता है कि हम निजी ढंग से अपने निजी कल्याण का उस समय तक अनुसरण करते रहे जबतक हम अन्यों को वंचित करने की चेष्टा नहीं करते अथवा अन्य लोगों के लाभों की प्राप्ति के लिए उनके निजी यत्नों में बाधा नहीं डालते । प्रत्येक व्यक्ति अपने शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य का सबसे अच्छा संरक्षक है ।[2] मिल ने व्यक्ति को सर्वाधिक महत्व दिया है । वे न्यूनतम के प्रति सजग होते हैं और उनकी राय है कि अल्पमतों के मत भी श्रेष्ठ हो सकते हैं ।

व्यक्तिवाद के सिद्धांत का समर्थन करते हुए हॉब्स ने स्पष्ट कहा है कि "जनहित का अर्थ व्यक्तिहित के अलावा और कुछ नहीं है । समाज आत्मा विहीन हैं, मात्र व्यक्ति का अस्तित्व यथार्थ है ।"[3] इस सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति ही महत्वपूर्ण है । समाज का कोई हित कभी नहीं होता । अतः अस्तित्ववान व्यक्ति ही सबकुछ है ।

---

1. C.E.M.Jaud - Modern Political Theory - P.24.
2. 'The only freedom which deserves the name', Mill maintains, 'is that of pursuing over own good in our own way, so long as we do not attempt to deprive others of theirs, or impede their efforts to obtain it. Each is the proper guardian of his own health whether bodily or mental and spiritual - A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.639
3. A general or public good like a public will is a figment of imagination, there an only individuals who desire to live and to enjoy protection for the means of life - George H Sabine - A History of Political Theory - P.439

हर्बर्ट स्पेन्सर के चिन्तन में व्यक्तिवाद का चरम स्वरूप दिखलाई पड़ता है । उन्होंने विज्ञान के आधार पर अपने तर्कों को प्रस्तुत किया है । डारविन के विकासवाद के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने राज्य को एक आवश्यक संस्था बतलाया । संगठित समाज के रूप में ही मनुष्य को एक विकसित वातावरण प्राप्त हो सका है । राज्य का बनना एक अनिवार्य स्थिति है तो व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति सजगता भी अनिवार्य है । इन्होंने इस बात को परम सत्य माना था कि अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करनेवाले योग्यतम व्यक्ति ही जीने लायक है । हर एक को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो राज्य के साथ वे ही उन्नति कर सकेंगे जो योग्य हैं । स्पेन्सर ने यद्यपि व्यक्तिगत स्वतंत्रता को इतना अधिक महत्व दिया था कि अन्त में आकर यह विडम्बनात्मक स्थिति हो गयी कि उनका सिद्धांत व्यक्ति के खिलाफ नृशंस हो उठा । "योग्यतम ही जिये" सिद्धांत पर उनका ध्यान इतना अधिक गया कि बूढ़े बच्चे बीमार और निराश्रितों को किसी तरह का प्रश्रय देने में वे विमुख हो गये ।[1]

आधुनिक युग के श्रेष्ठ राजनीतिक विचारक नार्मन एंजेल ने अपनी पुस्तक "द ग्रेट इल्यूज़न" में माना है कि राज्य की सत्ता से अधिक महत्व अन्तर्राष्ट्रीयवाद को देना है ।[2] मानव पर राज्य की सीमा में वे मनुष्य की

---

1. Herbert Spencer admires and advocates the law of the survival of the fittest, according to which the State should allow the poor, the weak and imbecile, the insane, the ignorant and inefficient to go to the wall - A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.640
2. Internationalism like pluralism aims at discrediting the monistic theory of the sovereignty of the State and emphasis the multiplicity of relations outside the state- A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.647

सीमाओं का समाधान नहीं देखते । आधुनिक व्यक्तिवाद के दूसरे प्रसिद्ध विचारक है ग्राहम वॉलिस । वे राज्य को अतीव शक्ति देने के पक्ष में नहीं है । उनकी मान्यता है कि राज्य को जितनी अतिरिक्त शक्ति मिलेगी व्यक्ति का महत्व उतना ही कम होगा । "अपनी पुस्तक "दी ग्रेट सोसाइटी" में अतिविकसित राज्य की शक्ति में उन्होंने अविश्वास प्रकट किया है ।"[1]

राजनैतिक व्यक्तिवाद के क्षेत्र में मिस फॉलेट को हम आधुनिकतम विचारक स्वीकार कर सकते हैं । उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ "द न्यू स्टेट" में व्यक्तिवाद का नया रूप दिखाई पड़ता है । वे राज्य से बेहतर समुदायों और संगठनों को महत्व देती हैं ।[2] किन्तु समुदाय के अन्तर्गत उन्होंने व्यक्ति को विशेष वरीयता दी है । वे शासकीय दबाव एवं कानून की अनिवार्यता को आवश्यक भी नहीं मानती । उनके सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति और समाज में विरोध नहीं दिखाई पड़ता बल्कि वे सहयोगी है । फिर भी व्यक्ति को ही उन्होंने प्राथमिकता दी है ।[3]

---

1. Wallas, in his book, Great Society, shows a similar distrust of the power of the over-developed state.
A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.647
2. Miss Follet agrees with the pluralists and others who contri bute to the theory of modern Individualism on the importance of the groups.
A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.647.
3. "No Government" in her considers opinion, "will be successful no government will endure, which does not rest for the individual and no government has get found the individual
A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.643.

निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति की उन्नति के लिए सहयोगी काम ज़रूरी है । शासन और व्यक्ति के बीच सहयोग होना समाज के लिए अनिवार्य है किन्तु व्यक्ति को महत्व देने के लिए मनुष्य और राज्य के बीच के संघर्ष को मिटाना है ताकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में उसकी उन्नति हो जाय ।

आर्थिक व्यक्तिवाद

आर्थिक व्यक्तिवाद का अर्थ है व्यापार के क्षेत्र में व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता का अवसर प्राप्त करना । यानी धन के विनिमय में व्यक्ति के सामने कोई व्यवधान न होना । एडम स्मिथ और बैंथम तथा उनके अनुयायियों ने इंग्लैंड में उन्नीसवीं शताब्दी में व्यक्तिवादी चिन्तन को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचा दिया । एडम स्मिथ ने "लेसे फेयर" के सिद्धांत को मान लिया । "वेल्थ आफ नेशनस" नामक ग्रंथ में व्यापार में व्यक्ति की निरंकुश स्वाधीनता का समर्थन किया गया है । वे आर्थिक क्षेत्र में प्राकृतिक नियम का समर्थन करते हैं । यानी राज्य को व्यापार तथा अन्य प्रधान आर्थिक कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए और व्यक्ति की मौलिक स्वतंत्रता को मान्यता देनी चाहिए ।[1] औद्योगिक क्रान्ति के परिवेश में इस सिद्धांत का स्वागत यूरोप और इंग्लैंड में हो गया । प्रजातन्त्र का आधार व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है तो आर्थिक क्षेत्र में भी यह शासन प्रणाली व्यक्ति को छूट देती है । पर पूँजीवाद, औद्योगिक विकास आदि के फलस्वरूप आर्थिक क्षेत्र में भी नयी-नयी समस्यायें आने लगीं ।[2]

---

1. If every individual, he argued, was allowed to follow his pursuit as and what he deemed best, he would be a greater gainer and that would ultimately result in the good and prosperity of the community as a whole
A.C.Kapur - Principles of Political Science - P.638
2. सुबासकुमार - आधुनिक हिन्दी कविता - पृ.3.

आर्थिक व्यक्तिवाद पर विचार करते समय हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रजातन्त्र में व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता देना उचित नहीं है । इसका कारण यह है कि समाज में शोषण की वृत्ति बढ़ती जाती है । इसलिए सरकारी नियंत्रण आवश्यक हो गया है । संक्षेप में दुनिया के अनेक राष्ट्र मानते हैं कि सामूहिक शोषण को रोकने के लिए निरंकुश व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर नियंत्रण लाना अनिवार्य है ।

धार्मिक व्यक्तिवाद

यूरोप के "रिफारमेशन" या धार्मिक नवोत्थान के साथ धार्मिक व्यक्तिवाद का आविर्भाव हुआ । ईसाई धर्म जनतांत्रिक सिद्धांतों को ज़्यादा महत्व नहीं देता था । चर्च के अन्तर्गत व्यक्ति को कोई स्थान नहीं दिया जाता था बल्कि ऊँचे अधिकारियों के हुकुम पर लोगों को चलना पड़ा । लेकिन व्यक्ति का मन स्वतंत्रता के लिए तड़प रहा था । इस संदर्भ में प्रोटस्टेन्ड धर्म का उद्भव हुआ । धर्म और राजकीय सत्ता के गठबन्धन में अनेक प्रकार के भ्रष्टाचार हुए । धीरे-धीरे धार्मिक व्यक्तिवाद का जन्म हुआ । प्रसिद्ध अमेरिकी लेखक स्टीवन लूकस ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है कि व्यक्ति साधक को धर्मसाधना में किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है, अपने आध्यात्मिक लक्ष्य के लिए वह स्वयं जिम्मेदार है ।[1]

---

1. Religious Individualism may be defined as the view that the individual believer does not need intermediaries that he has the primary responsibility for his own spiritual being.
   Steven Lukas - Individualism - .94

कोई भी व्यक्ति धार्मिक रूढ़ियों और आचारों का शिकार बनकर रहना नहीं चाहता, खासकर आधुनिक युग में वह अपनी स्वतंत्रता के अनुसार व्यवहार करना चाहता है । इसलिए व्यक्ति इन जंजीरों को तोडकर स्वातंत्र्य की माँग करता है । अत: धर्म और व्यक्ति का संघर्ष बढ़ने की संभावना हो जाती है ।

प्राय: सारे धर्मों के इतिहास में इस प्रकार की आचारनिष्ठता और व्यक्तिनिष्ठता की प्रवृत्तियों का संघर्ष दृष्टिगोचर होता है । हिन्दू धर्म के आचारों की प्रतिक्रिया के रूप में बौद्ध धर्म का उदय हुआ था । सूफियों की सूक्ष्म व्यक्तिसाधना का विद्रोही स्वर लेकर इस्लाम का आविर्भाव हुआ । उसी प्रकार ईसाई कैथलिक धर्म ने आचारों और केन्द्रीय सत्ता का उग्र रूप लिया तो उसके विरुद्ध प्रोटस्टन्ड धर्म का विस्फोट यूरोप में हुआ ।

इन सब के बावजूद प्रत्येक धर्म के अपने-अपने अनेक गुण भी हैं । ईसाई धर्म व्यक्ति महिमा को स्वीकार करता है । इसका प्रमाण बाइबिल में मिलता है । येसू मसीहा ने आचारों और अनुष्ठानों को ज़्यादा बल देनेवाले यहूदी पुरोहितों के सम्मुख सख्त नियमों के परे मनुष्य को बड़ा स्थान दिया था ।[1]

---

1. And Jesus concluded, 'The Sabbath was made for the good of man; man was not made for the Sabbath'.
St.Mark 2:27 - Good News New Testament.

धर्म के गिरफ्त में रहते व्यक्ति को एक प्रकार का घुटन महसूस होना स्वाभाविक है । उसके खिलाफ विद्रोह भी स्वाभाविक परिणति है । इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी व्यक्तिवाद की भूमिका का निर्वाह हुआ है ।

अस्तित्ववाद :-

अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद का सर्वोच्च रूप है । यह एक ऐसा दर्शन है जिसका आधार व्यक्ति का अस्तित्व है । इस दर्शन के अनुसार व्यक्ति ही सर्वोपरि है । उसकी स्वतन्त्रता ही इस दर्शन की बुनियादी चेतना है । दर असल यह दर्शन कई विचारधाराओं का सामान्यीकृत नाम है और इसमें व्यक्ति के अस्तित्व को प्रमुखता दी गयी है ।[1] सचमुच अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्ति से ही आरंभ होता है । प्रथम विश्वयुद्ध के बाद अस्तित्ववाद शब्द ने एक दार्शनिकता का बाना ओढा। व्यक्ति अस्तित्व की क्षति होने के इस सिलसिले में कई दार्शनिकों ने व्यक्ति के अस्तित्व पर विचार किया था ।

अस्तित्ववाद के प्रथम दार्शनिक सोरेन कीर्केगार्ड यद्यपि कैथलिक चिन्तक थे लेकिन ईसाई धर्म को उन्होंने सामाजिक चेतना के रूप में नहीं माना था । ईसाई सभ्यता उनकी दृष्टि में व्यक्तिगत आत्म इकाइयों के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।[2]

---

1. हिन्दी विश्वकोश पहला भाग - पृ. 310
2. A Christian civilization is nothing other than the quantity of the individual souls living by personal decision on the Christian faith
   H.J.Blackham - Six Existentialist Thinkers - P.5.

सत्य, निर्वाचन और ईश्वर कीर्केगार्ड के दर्शन में महत्वपूर्ण है । उनका कथन है कि सर्वप्रथम हमारा कर्तव्य उत्थान करना है । उन्होंने यह भी कहा कि यदि हम स्वयं सुधार कर लेंगे तो अन्य लोग भी हमारा अनुकरण करेंगे । देकार्त की प्रसिद्ध उक्ति "मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ" को कीर्केगार्ड ने "मैं हूँ इसलिए मैं सोचता हूँ" में बदल दिया ।[1] दरअसल वे व्यक्ति को सर्वाधिक महत्व देते हैं । अपनी कब्र की स्मारक शिला के लिए उन्होंने "वह व्यक्ति" शब्द को ही चुन लिया ।[2] स्पष्ट है कि व्यक्तिमहिमा और व्यक्ति की स्वतन्त्रता को कीर्केगार्ड ने अनुपम स्थान दिया था ।

अस्तित्ववाद का उद्भव-पृष्ठभूमि :-

अस्तित्ववाद के उद्भव की पृष्ठभूमि पर दो महाविश्वयुद्धों का प्रभाव पड़ा है । इन महायुद्धों के साथ निरन्तर विकसित विज्ञान ने भी इस दर्शन के पनपने में सहयोग दिया है । युद्धकालीन विभीषिकाओं ने मानवीय गरिमा और मानवीय व्यक्तित्व को विघटित कर दिया था । फलत: मानव जीवन की क्षुद्रता नृशंसता और स्वार्थपरता का पर्दाफाश हुआ कि उसकी आस्था डावांडोल होने लगी । सर्वत्र निराशा और वेदना का वातावरण छा गया और मानवमूल्यों का विघटन होने लगा । तकनीकी विज्ञान की उपलब्धियों के बावजूद मनुष्य ने मृत्यु का जो भयानक रूप देखा उससे अपनी स्वर्णिम कल्पनाओं का भंग हुआ । उसे अपनी निस्सारता का बोध हुआ । अपने द्वारा बनायी गयी मशीनों के आगे वह बौना

1. Frank Thilly - History of Philosophy - P.305
2. Kierkegard said, "If I were to desire an inscription for my tombstone, I should desire none other than 'that individual' - Steven Lukas - Individualism - P.97

हो गया तो आदमी आदमी का रिश्ता भी टूटता गया । दरअसल मानव अपने अस्तित्व पर सोचने केलिए विवश हो गया । अपने अस्तित्व की इस असंदिग्ध अवस्था में वह अपनी खोई हुई अस्मिता को आधार बनाकर जीवन की समस्यायें सुलझाने के लिए तैयार हो गया । फलत: अस्तित्ववाद का प्रचार-प्रसार हुआ ।

अस्तित्ववादी विचारधारा - प्रमुख प्रवर्तक :-

अस्तित्ववादी जीवन दर्शन एक आत्मोन्मुखी, आत्मभोगी, अराजकतावादी एवं असामाजिक जीवन-दर्शन है । इस दर्शन के जनक यद्यपि कीर्केगार्ड है फिर भी इसे व्यापक एवं लोकप्रिय बनाने का श्रेय ज्याँ पाल सार्त्र को मिला है । अस्तित्ववादी विचारकों में आस्तिक और नास्तिक दोनों हैं । कीर्केगार्ड, कार्ल जास्पर्स, गब्रियल मार्सल आदि प्रथम वर्ग के दार्शनिक हैं । नास्तिक चिन्तकों में फ्रेडरिक नीत्शे, मार्टिन हैडेगर, ज्याँ पाल सार्त्र अलबेयर कामू और फ्राँच काफ्का प्रमुख हैं । लेकिन दोनों गुटों में मानव के अस्तित्व, अस्तित्व को वरीयता देने की प्रवृत्ति तथा स्वतन्त्रता संबंधी विचारों में अंतर्विरोध है । आगे इन पर हम विचार करेंगे ।

अस्तित्व :-

अस्तित्ववाद की स्थापना है कि सार के पूर्व अस्तित्व का रूपायन होता है । सार्त्र ने ऐलान किया है, "अस्तित्व सार का पूर्ववर्ती है ।"[1] इस सिद्धांत के अनुसार सारे चेतन पदार्थ पहले अस्तित्व में आता है फिर उसका सार रूपायित होता है । अस्तित्व शब्द का मूल रूप Existeri है । इसका

1. "Existence precedes essence" - Jean Paul Sartre - Existentialism and Humanism - P.28

मतलब है - एक स्थिति से दूसरी उन्नत स्थिति की ओर गति । मनुष्य गतिशील प्राणी है और उसका कोई अन्तिम रूप नहीं । इस पर अस्तित्ववादियों का दावा है कि मनुष्य है नहीं, हो रहा है की स्थिति में रहता है ।[1] सार्त्र के अनुसार मानव को किसी शिकंजे में रखना असंभव है, वह सतत विकासशील या परिवर्तनशील है । कीर्केगार्ड की राय में अस्तित्व मनुष्य के बाह्य अस्तित्व में बोधगम्य नहीं है बल्कि परम संकट के क्षणों में क्षण मात्र के लिए प्रकाशित हो उठता है । उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति इकाई अपने आप में स्वयं जैसी है । आध्यात्मिक या वैज्ञानिक प्रक्रिया के संदर्भ में वह अविश्लेषणीय है । वह स्वयं चुनाव करता है चिन्तन करता है क्योंकि वह स्वतन्त्र है । उसका भविष्य भी उसके स्वतन्त्र चुनाव पर निर्भर है ।[2]

अस्तित्ववादी दार्शनिक मनुष्य की अवस्था को ही अस्तित्व मानते हैं । कार्ल जास्पर्स की दृष्टि में वस्तुओं की सत्ता अपना अस्तित्व नहीं मानतीं । किन्तु मनुष्य चिन्तनशील होने की वजह से वह अभिज्ञ है कि वह है ।[3] लेकिन हैडेगर की धारणा यह है कि मनुष्य का ही अस्तित्व है, वही अस्तित्ववान है । चट्टानें, घोड़े, वृक्ष आदि वर्तमान है किन्तु उनका अस्तित्व नहीं ।[4]

सार और अस्तित्व :-

मानव होने की अवस्था को सार कहते हैं । सार कल्पना है लेकिन जब अस्तित्व उससे जुड़ जाता है तब कल्पना यथार्थ बन जाती है । मनुष्य का

---

1. Paul Foulquie - Existentialism - P.11
2. Encyclopedia Britanica - Vol.8 - P.968
3. H.J.Blackham - Six Existentialist Thinkers - P.58
4. Edwalter Kaufmann - Existentialism from Dostovsky to Sartre - P.215

अस्तित्व पहले होता है फिर सार बनता है । सार्त्र ने स्पष्ट घोषित किया है, सर्वप्रथम मनुष्य का अस्तित्व होता है, उसके बाद वह अपनी परिभाषा करता है ।[1] सारे अस्तित्ववादी दार्शनिक व्यक्ति के अस्तित्व को ही वरीयता देते हैं । सार्त्र ने सूचित किया है कि मनुष्य के अस्तित्व का कोई कारण नहीं । किसी भी मनुष्य के अस्तित्ववान होने की कोई सफाई नहीं दी जा सकती । वह अचानक और अकारण ही अस्तित्ववान हो जाता है ।[2]

व्यक्ति की स्वतंत्रता :-

सभी अस्तित्ववादी व्यक्ति की स्वतंत्रता के समर्थक हैं । इस स्वतंत्रता का सीधा संबंध व्यक्ति के अस्तित्व से होता है । व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता अनिवार्य है क्योंकि कार्य करने की प्रथम शर्त वही है । प्रसिद्ध अस्तित्ववादी चिन्तक ज्याँ पाल सार्त्र व्यक्ति की स्वतंत्रता पर सबसे ज़्यादा ज़ोर देते हैं । उनकी दृष्टि में स्वतंत्रता मानव अस्तित्व के लिए अत्यन्त आवश्यक है । उन्होंने यह बात भी व्यक्त की है कि यदि हम अपना सार स्वयं नहीं चुन सकते तो हमारी सारी स्वतंत्रता दासता के बराबर हो जाती है ।[3] व्यक्ति के अस्तित्व पर बल देते हुए उन्होंने ठहराया है कि मैं वह अस्तित्व हूँ जो अपने कार्यों के माध्यम से स्वतंत्रता सीखता है ।[4] स्वतंत्रता पर सार्त्र ने अपनी अवधारणाओं को प्रस्तुत करके इसकी अनिवार्यता को प्रश्रय देने का काफी प्रयास किया है । उनका कथन है कि मानव स्वतंत्र होने के लिए अभिशापित है । अभिशापित इसलिए कि

---

1. Jean Paul Sartre - Existentialism and Humanism - P.28
2. Jean Paul Sartre - Nausea - P.180
3. Jean Paul Sartre - Being and Nothingness - P.531.
4. Ibid - P.439

उसने स्वयं को ही रचा, फिर भी अन्य बातों में वह स्वतन्त्र है क्योंकि इस दुनिया में डाल दिये जाने के बाद वह अपने सारे कामों के लिए उत्तरदायी है ।[1]

एक बार सार्त्र ने कामू को लिखा कि आज इसके सिवाय हमारी कोई स्वतंत्रता नहीं है कि हम स्वतन्त्र होने के लिए संघर्ष हेतु स्वतन्त्र वरण करें । और इस सिद्धांत का परस्पर विरोधी रूप केवल हमारी परस्पर विरोधी ऐतिहासिक स्थिति को व्यक्त करता है ।[2] किन्तु सार्त्र की मान्यता है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता सिर्फ अपने लिये नहीं दूसरों के लिए भी है । व्यक्ति अपने चुनाव के लिए उत्तरदायी भी है ।[3] उसका चुनाव संपूर्ण समाज का चुनाव है । अतः चुनाव करने के लिए व्यक्ति स्वतंत्र है । स्वतंत्रता मानवीय स्वभाव है इसलिए वह दूसरों पर अपेक्षित नहीं है । लेकिन अपनी स्वतंत्रता के समर्थन करने के साथ साथ दूसरों की स्वतंत्रता का समर्थन करने के लिए भी वह मजबूर हो जाता है ।[4]

---

1. Man is condemned to be free. Condemned because he did not create himself, yet in other respects free because once thrown into this world he is responsible for everything he does - Jean Paul Sartre - Existentialism and Humanism - P.34
2. Our liberty today is nothing except the free choice to fight in order to become free. And the Paradoxical aspect of this formula simply expresses the paradox of out historical conditions - Jean Paul Sartre - Situations - P.90
3. Jean Paul Sartre - Existentialism - P.19-20.
4. freedom as the definition of man does not depend on others; but as soon as there is involvement, I am obliged to want others to have freedom at the same time that I want my own freedom - Jean Paul Sartre - Existentialism - P.54.

अन्य अस्तित्ववादी चिन्तकों ने भी सार्त्र के स्वर में स्वर मिलाकर यह साबित किया है कि स्वतंत्रता व्यक्ति के लिए अत्यन्त ज़रूरी है । दॉस्तोएवस्की के अनुसार मनुष्य की स्वतंत्रता सिर्फ स्वतन्त्रता ही नहीं बल्कि उसकी स्थिति है ।[1] जास्पर्स ने व्यक्ति की स्वतंत्रता पर अपना मत यों प्रकट किया है कि, "हमारी स्वतंत्रता हमारी अन्तर्दृष्टि की अपेक्षा हमारे काम द्वारा सिद्ध होती है ।"[2] मनुष्य को स्वतंत्र रहना चाहिए तभी वह चयन करने में समर्थ हो जाएगा । इसके अभाव में वह अस्तित्वहीन हो जाता है । जास्पर्स ने पुनः समझाया है कि, "चयन में ही मैं हूँ, यदि मैं चयन में विफल हो जाता हूँ तो मैं नहीं हूँ ।"[3] उनके अनुसार व्यक्ति का अस्तित्व चयन करने की स्वतंत्रता का द्योतक है । यद्यपि सार्त्र और जास्पर्स की मान्यताओं में अन्तर है .फिर भी व्यक्ति की स्वतंत्रता पर दोनों ने बल दिया है । इनकी दृष्टि में वैयक्तिक स्वतंत्रता एक मूल्य है । कीर्केगार्ड से लेकर सार्त्र तक के सभी विचारकों ने व्यक्ति चेतना के स्वातन्त्र्य पर ज़्यादा ज़ोर दिया है ।

अतः यह बात स्पष्टतः जाहिर है कि अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद से एकदम भिन्न कोई दर्शन नहीं बल्कि व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों को प्रखर एवं सघन बनाती एक विचारधारा है ।

---

1. Freedom is not only man's freedom, but man's fate as well - Nicolai Berdyaev - Christian Existentialism - P.137.
2. Freedom proves itself by my action rather than my insight - Karl Jaspers - Philosophie - P.175.
3. In choosing I am, and if I am not, it is because of my failure to choose - Karl Jaspers - Philosophie - P.182.

अस्तित्ववादी दर्शन के अन्य संघटक तत्व :-

अस्तित्ववाद के अन्य संघटक तत्वों - मृत्युबोध, संत्रास, निरर्थकता, क्षण का महत्व आदि प्रमुख हैं । इनके साथ शून्यताबोध, निराशा, व्यथा, अपराध भावना और एकाकीपन भी मानवीय अस्तित्व में अनिवार्य रूप से निहित हैं । आगे अस्तित्ववादी दर्शन के प्रमुख संघटक तत्वों पर ही हम विचार करेंगे ।

मृत्युबोध :-

अस्तित्ववादी दर्शन का एक प्रमुख संघटक तत्व है मृत्युबोध । कीर्केगार्ड की दृष्टि में मृत्यु एक चुनौती है । लेकिन वह मनुष्य के अस्तित्व का अन्त नहीं है बल्कि वह उसे जीवन धारण करने का एक अवसर प्रदान करती है । अतः मनुष्य को सदैव अपना ध्यान आत्मातिक्रमण की ओर लगाना चाहिए ।[1] जास्पर्स के अनुसार मानवीय अस्तित्व की स्वाभाविक परिणति है मृत्यु । मृत्यु के क्षण केवल शरीर मरता है, लेकिन चेतना की स्वतंत्रता नहीं मरती, उसकी क्रिया चलती रहती है ।[2] कामू के नाटकों में मृत्युबोध का एक भिन्न स्वर सुनाई पड़ता है । "प्लेग" नाटक में नायक कहता है, "मुझ जैसे लोगों को मृत्यु की चिन्ता नहीं है । घटनाएँ और परिणाम ही उसे सही साबित करते हैं ।"[3] मृत्यु का स्वागत करके नीत्शे कहते हैं, "मेरी मृत्यु ! मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ, उस स्वतन्त्र मृत्यु की जो मुझे आती है क्योंकि मैं उसे चाहता हूँ ।"[4] मार्टिन हैडेगर ने स्पष्ट

---

1. Paul Roubiczek - Existentialism for and against - P.114
2. H.J.Blackham - Six Existentialist Thinkers - P.53
3. Albert Camus - The Plague - P.117
4. Robert G.Olson - An Introduction to Existentialism - P.200

किया है कि, "मैं आत्महत्या के द्वारा मृत्यु की प्रकल्पना नहीं करता, अपितु मृत्यु की सदा तत्काल संभव और सबकुछ का निर्मूल्यन करनेवाली उपस्थिति में जीवित रहता हूँ । पूर्ण रक्तमय मृत्यु की स्वीकृति में रहना प्रमाणिक वैयक्तिक अस्तित्व है ।[1] किन्तु सार्त्र के लिए मृत्युवरण से व्यक्ति अपना अर्जित सार तो नष्ट करता है । अतः मृत्यु प्रमाणिक रूप में रहने के लिए संकेत सूत्र है ।[2]

संत्रास :-

हैडेगर के अनुसार संत्रास मनुष्य की वह आधारभूत अनुभूति है कि मनुष्य उस जगत से संबंधित नहीं है जिसमें वह है और वह जगत में व्याकुलावस्था में रहता है ।[3] जब वह इस अवस्था से पलायन करने का प्रयास करता है तो संत्रास उसका पीछा करता है । संत्रास भय से भिन्न है । भय का कोई निश्चित तथा विशिष्ट कारण होता है । लेकिन संत्रास का कोई कारण समझ में नहीं आता । संत्रास किसी वस्तु विशेष को भ्रांत मानकर उससे उत्पन्न नहीं होता । अतः कोई दिशा ऐसी नहीं होती जिसमें उसको खोजा जा सके ।

अस्तित्ववाद में संत्रास मनुष्य की वह अवस्था है जो उसके समक्ष उसके संसार में होने तथा उसके अस्तित्व के संरचनात्मक पक्ष को अभिव्यक्त करती है । मानव अस्तित्व की समीपता पतनावस्था और अल्पकालिकता ही मनुष्य के संसार

---

1. H.J.Blackham - Six Existentialist Thinkers - P.96
2. डॉ.श्यामसुन्दर मिश्र - अस्तित्ववाद और साहित्य - पृ.38
3. Martin Heidegger - Being and Time - P.231.

में होने के संरचनात्मक पक्ष है जो संत्रास की अनुभूति के माध्यम से व्यक्त होते हैं ।[1] हैडेगर ने पुनः स्पष्ट किया है कि मृत्यु के संत्रास से मनुष्य में अपराधभाव उपजता है कि वह अब तक अपने उत्तरदायित्व को भुला रहा, अपराधभाव का अनुभव होने पर मनुष्य में निश्चय की भावना आती है और वह अपने उत्तरदायित्व का वहन कर अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करने की चेष्टा करता है ।[2] अस्तित्ववादियों के मत में संत्रास में मनुष्य को लगता है कि संसार क्षण भंगुर है या मूल्यहीन है । उसे शून्यता का अनुभव होता है। मृत्यु के संत्रास से युक्त व्यक्ति को अपने अस्तित्व के लिए अनिवार्य संभावनाओं के अभाव में चारों ओर शून्य ही शून्य नज़र आता है ।[3]

विसंगति :-

विसंगति {एब्सर्डिटी} अस्तित्ववादी दर्शन का नियामक संघटक तत्व हैं । इसका उद्भव निर्वासन से होता है । निर्वासन संबंध भंग की वह भावना है जो मानव और उसके संबंध में आती वस्तुओं के बीच होती है । आत्मनिष्ठ रूप में यह मनुष्य की असंतुलित अवस्था तथा अजनबीपन की स्थिति है ।[4]

---

1. Dr.G.Srinivasan - The Existentialist Concepts and the Hindu Philosophical systems - P.80
2. Ibid - P.87-88
3. Martin Heidegger - Existence and Being - P.370
4. F.R.Heinmann - Existentialism and Modern Predicament - P.9

प्रत्येक व्यक्ति सुख और चैन चाहता है और ज़िन्दगी के कई स्वप्न लेकर आगे बढ़ता है । किन्तु अस्तित्ववादियों की मान्यता है कि विश्व में जिस तरह का जीवन पाया जाता है उसमें मानवीय कामनाओं की पूर्ति संभव नहीं है । मानव अपनी सारी इच्छाओं को नष्ट होते देखकर दुखी बनता है और इसी कारण उसमें विसंगति जाग्रत होती है । यानी विसंगति मानवीय इच्छा तथा उसके प्रति दुनिया के अयुक्तिक सन्नाटे की द्वन्द्वता से उद्भूत होती है ।[1]

कीर्केगार्ड ने ही सबसे पहले निर्वासन का विश्लेषण करके यह स्पष्ट बताया कि "अहं इदं" के द्वैत की समस्या का कोई विवेक सम्मत निदान नहीं है क्योंकि मनुष्य अनित्य और मरणशील है, उसके सृजन में ही अंतर्विरोध है । नास्तिक अस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्र ने आत्मनिर्वासन की प्रवृत्ति को व्यक्ति की प्रतिक्रिया की परिणति माना है । विश्वजनीय उपकरणपरकता के संदर्भ में व्यक्ति स्वयं एक उपकरण मात्र है पर उसकी कामना होती है कि सबको अपने लिए उपयोगी बनाए और खुद उपयोगी बनने के विरुद्ध प्रतिषेध करे । यह संकटपूर्ण स्थिति ही अंततोगत्वा आत्म निर्वासन का कारण बन जाती है । अन्य की उपस्थिति स्वतंत्रता का अपहरण करती है और इससे आत्मनिर्वासन का बोध तीव्रतर हो जाता है ।[2]

कामू ने विसंगति का सर्वांगीण विश्लेषण किया है । उनकी राय में जो निरर्थक है वह सब एब्सर्ड है । मनुष्य के हर दिन के कार्यक्रमों का उदाहरण

---

1. The absurd is born of this confrontation between the human need the unreasonable silence of the world - Albert Camus - Myth of Sisyphus - P.18-19.
2. H.J.Blackham - Six Existentialist Thinkers - P. 134-135.

देकर इसे स्पष्ट करने का प्रयास भी किया गया है - प्रातः उठना, गाडी पकडना, चार घण्टे कार्यालय या फैक्टरी में काम करना, भोजन करना, पुनः चार घण्टे काम, भोजन, नींद और सोम, मंगल, बुध, वीर, शुक्र और शनि, उसी ताल के अनुसार अधिकांश समय निसृत होता है । काम्‌ एब्सर्ड के दार्शनिक है । उनके अनुसार यह संसार विसंगति से परिपूर्ण है । उनकी समस्त कृतियों में इसकी झलक मिलती है । उनकी रचनाओं का मूल स्वर निराशा और हताशा है । "मिथ आफ सिसीफस" में उन्होंने यही बताया है कि मानवजीवन अर्थहीन है । मनुष्य होने का अर्थ क्या है, यही सवाल उसमें गूँज रहा है । यही उसे आत्महत्या की ओर तक अग्रसर करता है ।[1] मानव मन विश्व में सुसंगति और सामंजस्य की अपेक्षा रखता है लेकिन अनुभव उसे विसंगति और विकलता का होता है । इस तरह मन की आवश्यकता तथा उसके प्रति विश्व के रवैये से विसंगति की अनुभूति होती है ।

विसंगति मानव मन के भीतर ही है । वह अगोचर, वैयक्तिक और अनुभूतिपरक है । यांत्रिक जीवन के हर क्षण में उसकी अनुभूति हो सकती है । इस निरर्थक जीवन में व्यक्ति के सारे सपने टूट जाते हैं और वह निराश एवं हताश भी हो जाता है । उसके मन में इस ज़िन्दगी के प्रति एक प्रकार की नफरत की भावना उत्पन्न होती है । इस निरर्थक ज़िन्दगी को जीते जीते उसे लगता है कि समय शत्रु है । वह मानव अभिलाषाओं और कामनाओं को अवरुद्ध कर देता है और आखिर मृत्यु के दरवाज़े पर खडा कर देता है । यानी निरर्थकताबोध मानव में निराशा तथा आत्मघात की भावना भी जगा देता है । निरर्थक ज़िन्दगी के भार से मुक्त होने के लिए जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया है, मानव में आत्महत्या की चाहत तक होती है ।

---

1. One kills onself because life is not worth living that is certainly a truth - Albert Camus - Myth of Sisyphus - P.50.

क्षण की महत्ता :-

अस्तित्ववादी दर्शन में क्षण का विशेष महत्व है । क्षण प्रवाहमान कालधारा का एक अंश है । इसकी अनुभूति अद्वितीय होती है । व्यक्ति क्षण में जीवन का अनुभव करता है ।[1] सचमुच पल का ही हकीकत है । वह सनातन भी है । मानवीय अनुभूति की सार्थकता क्षणों के अन्दर जीने में ही है । इसलिए प्रत्येक क्षण का अतुलनीय महत्व है ।

क्षण की महत्ता पर अस्तित्ववादी दार्शनिकों ने विस्तार से विचार किया है । उनकी मान्यता है कि मनुष्य प्रत्येक क्षण को जीते हुए अपने अस्तित्व को अर्थ प्रदान करता है । वह क्षणों में रहता है और हर क्षण वह चुनाव भी करता है । यों जीवन क्षणों के प्रवाह का समग्र रूप है । यह चिन्तन पद्धति जीवन की स्वीकृति का प्रमाण भी है ।[2]

अस्तित्ववादी वर्तमान में विश्वास रखता है क्योंकि अतीत तो बीत चुका है और भविष्य अनिश्चित भी है । किसी भी क्षण में मृत्यु आ सकती है । यानी भविष्य की कल्पनाओं के बदले वर्तमान क्षण ही महत्वपूर्ण है । जो क्षण व्यक्ति को तृप्त करनेवाला होता है वह शेष जीवन की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण एवं ग्रहणीय है । अत: क्षण के महत्व के प्रति अस्तित्ववादी चिन्तक जागरूक रहते हैं । जास्पेर्स निर्णय और वरण को क्षण-सापेक्ष मानता है । काल की दृष्टि में क्षण अनवरता है और सामयिकता भी । क्षण शाश्वत का अंश होते हुए भी, एक अलग इकाई है । यों प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण और सार्थक है ।[3]

---

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 - पृ. 93
2. वही - पृ.
3. डॉ. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य पृ. 414

सार्त्र ने भी क्षण को वरण के साथ जोड दिया है । मानवीय चेतना में यह शक्ति है कि वह नियत जीवनक्रम को तोडकर नवीन योजना का चुनाव कर सकती है । चुनाव का यह क्षण अंत और प्रारंभ दोनों है । किसी क्षण में कोई हिन्दू से मुसलमान बनता है तो वह क्षण उसके लिए हिन्दुत्व का अंत है और इस्लाम का आरंभ । दरअसल मानव हर पल चुनाव करता ही रहता है । जीवन चुनाव के क्षणों की एक लंबी कतार है ।[1]

व्यक्तिवाद - उद्भव और विकास

व्यक्तिवाद का उद्भव पश्चिम में हुआ था । इस पर दो महायुद्धों का प्रभाव पडा है । इन युद्धों की भयानक गतिविधियों ने राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक स्थितियों को डाँवाडोल कर दिया था । लोगों के बीच संशय, निराशा और अनास्था की भावनाएँ रह गयीं और इन विभीषिकाओं से मुक्त रहने के लिए वे असमर्थ रहे । किन्तु राजनीतिक क्षेत्र में अधिनायक तंत्र की प्रतिक्रिया के रूप में व्यक्तिवादी आन्दोलन की भूमि तैयार होने लगी । यानी इस स्थिति में सामाजिक और राजनैतिक स्थूलता से बढकर आत्म-लाभ और आत्मसुख का अनुभव करने की भूमिका भी तैयार होने लगी । यों व्यक्तिवादी विचारधारा की जडों की तलाश में हमें सत्रहवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक राजनीति तक के इतिहास पर नज़र डालने की ज़रूरत है ।

विद्रोही भावना और निषेध का स्वर :-

सबसे पहले राजा को शक्तिविहीन करने का प्रयास पार्लैंड में हुआ

1. Jean Paul Sartre - Existentialism and Human Emotions - P.16.

था जिसके फलस्वरूप राजा प्रजा द्वारा चुना गया । साथ ही नागरिकता, चर्च तथा सभ्यों के संरक्षण का दायित्व भी निश्चित कर लिया गया । राजा की निरंकुशता से राज्य को सुरक्षित रखने का यह प्रयास असफल रहा किन्तु इंग्लैंड में राजकीय शक्ति को झकझोरने में जनतंत्र की विजय हुई । ब्रिटेन के राजा चार्ल्स प्रथम को राजा के सम्मुख सिर झुकाना पडा । सन् 1688 में इंग्लैंड की राज्यक्रांति में राजा जेम्स द्वितीय को सिंहासन छोडना पडा । पार्ल्यमेन्ट के इशारे पर शासन करने के लिए राजा मजबूर हो गये । व्यक्ति स्वातंत्र्य का स्वर इसके पीछे मुखरित हो रहा था । इस सिलसिले में प्रोटस्टेंड धर्म पोप और उनके सम्राधिकार के विरुद्ध उठ खडा हुआ । फलत: धार्मिक क्षेत्र में प्रोटस्टेंड धर्म-सुधारकों ने व्यक्ति-स्वातंत्र्य और जनतांत्रिक अंशों को प्रतिष्ठित भी किया था ।[1]

राजनीतिशास्त्र में जो व्यक्तिवाद है वह "अमरिका का स्वातंत्र्य संग्राम", "फ्रांस की राज्यक्रान्ति" और यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम है । प्रत्येक क्रान्ति ने व्यक्ति स्वातंत्र्य के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया है और तत्संबंधी विचारों को व्यावहारिक रूप दिया है ।[2]

अठारहवीं सदी में मानवतावाद का प्रचार हो गया । इसी समय फ्रांस में भी निरंकुश राजशासन का बोलबाला चल रहा था । उस संदर्भ में वोल्टयर और रूसो अवतरित हुए जिन्होंने मानवता, मानव के मौलिक अधिकार, स्वातंत्र्य और समानता की प्रेरणा देते हुए लोगों में जोश पैदा किया ।[3]

---

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - नया साहित्य नये प्रश्न - पृ. 67
2. Hilaire Belloc - The French Revolution - P.30-31
3. In the age of Revolution probably Robespierre and the Jacobins owed most to Rousseau' for his theory of popular sovereignty and his denial of any ve[illegible] ight in Government. G.H.Sabine - A History of Political Theor[illegible] 5.

वोल्टयर अन्याय, अत्याचारों और अन्धविश्वासों का विरोध करने लगा और उनके मौलिक विचारों से प्रभावित जनता में रूढ़िगत धार्मिकता के प्रति अविश्वास बढ़ता रहा । चर्च और उसके पारलौकिक आदर्शों के विरुद्ध वातावरण तैयार हो गया । परिणाम स्वरूप अन्धविश्वासों का महत्व घट गया और बुद्धिवाद को प्रश्रय मिला ।[1] रूसो ने "सोशल-कंट्रेक्ट" §सामाजिक अनुबंध§ नामक पुस्तक द्वारा मनुष्य को अपने मौलिक सुखमय जीवन की आशाओं को अवधारणाएँ प्रदान कीं । वास्तव में रूसो ने क्रान्ति का पाठ नहीं पढ़ाया किन्तु अपनी पुस्तकों और विचारों से मानव मस्तिष्क को हिला दिया । अतः क्रान्ति का बीजावपन हो गया, जिससे क्रांति अंकुरित हो उठी ।[2] मोन्टस्क्यू ने भी कानून का वास्तविक अर्थ समझाकर जनता को जागरित रखा ।[3] कानून की आत्मा नामक अपने प्रसिद्ध प्रबन्ध में व्यक्ति-स्वातंत्र्य और जनतंत्र का समर्थन किया ।

व्यक्तिवादी विचारधारा को यथार्थ बनाने में तीन क्रान्तियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । अमेरिकी स्वातंत्र्य क्रांति, फ्रांसीसी क्रान्ति और औद्योगिक क्रांति ने व्यवस्था और संस्था की रचना में व्यक्ति की सत्ता की भूमिका पर बल दिया । मनुष्य व्यवस्था रूपी मशीन का एक पुर्जा नहीं है बल्कि संपूर्ण व्यवस्था ही उसकी सुखसुविधा के लिए है - इस सिद्धांत का प्रतिपादन भी इन क्रान्तियों के माध्यम से हुआ ।[4]

---

1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी - नया साहित्य नये प्रश्न - पृ. 67
2. Rousseau did not preach revolution, probably he did not expect one. But his books and ideas certainly sowed the seed in men which blossomed out in revolution - Jawaharlal Nehru - The Glimpses of World History - P.338.
3. H.A.L.Fisher - A History of Europe - P.782
4. व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवती चरण वर्मा - डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव - पृ. 2

अमेरिका की बस्तियों पर अंग्रेज़ों की साम्राज्यवादी मानसिकता अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जो बर्बरता कर रही थी उसके फलस्वरूप दोनों राष्ट्रों के बीच बड़ा संघर्ष हुआ ।[1] उस अवसर पर वर्जीनिया-निवासी एक ग्रामीण टामस जफर्सन {1776} द्वारा प्रस्तुत किये गये घोषणापत्र में, जो अमेरिका की महाद्वीपीय समिति की 4 जून 1776 को बैठक में प्रस्तुत किया गया था, मनुष्य के बुनियादी अधिकारों को सामने रखा गया है ।[2]

1. केवल अंग्रेज़ ही नहीं सभी मनुष्य ईश्वर प्रदत्त कतिपय अविच्छेद्य अधिकारों से युक्त है, जिनमें जीवन की स्वतंत्रता और आनंद की उपलब्धि मुख्य है ।
2. सभी शासक अपनी उचित शक्तियों को शासितों की स्वीकृति से प्राप्त करते हैं ।
3. अत्याचारी शासन को उलट देना और यदि आवश्यकता हो तो अस्त्रों शस्त्रों के बल से भी स्थापना करना न्यायोचित है ।

इन से निरंकुश शासन व्यवस्था का अंत हो गया । व्यक्तिस्वातंत्र्य की गूँज अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हुई थी । अतः व्यक्तिवाद की भूमिका मज़बूत करने में राज्यक्रांति सहायक हुई । अलावा इसके अमेरिकी संग्राम के ज़रिये फ्रांसीसी क्रांति को प्रोत्साहन भी मिला ।

---

1. American Revolution, a conflict between Britain and 13 colonies on the Atlantic Coast of North America. It is also called the American War of Independence and the Revolutionary War - Encyclopeadia Americana Vol.1 - Grolier Incorporated - P.714.
2. Political and cultural History of Modern Europe C.J.H.Hayes, P.482.

फ्रांस की राज्यक्रांति सिर्फ एक राजनैतिक घटना से बढ़कर व्यक्ति के तौर पर मानव के स्वत्वों का सशक्त समर्थन बनी रही । राजा के निष्कासित होने के साथ ही समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व जैसे सिद्धांतों की नींव डालनेवाला प्रकरण भी इस क्रांति में निहित था । निम्नलिखित विचारों की स्वीकृति इस क्रांति के द्वारा हुई ।[1]

1. सब मनुष्यों को स्वतन्त्र होना चाहिए, समान अधिकारों का उपयोग मिलना चाहिए, क्योंकि मनुष्य सब भाई भाई पैदा हुए हैं - दास और स्वामी नहीं । दूसरे शब्दों में स्वतंत्रता समानता और भ्रातृत्व सब मनुष्यों में होना चाहिए ।

2. जीवन के प्रत्येक पक्ष से संबंधित प्रश्नों का समाधान न्याय से होना चाहिए, पक्षपात से नहीं ।

3. प्रत्येक राष्ट्र को अपनी सरकार बनाने का अधिकार है और किसी दूसरे राष्ट्र को दबाने का अधिकार नहीं है ।

4. प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश के लिए सम्पत्ति, लाभालाभ और सुख समृद्धि तथा जीवन उत्सर्ग करने को तैयार रहना चाहिए क्योंकि वह देश को प्यार करता है ।

फ्रांसीसी राज्यक्रांति से जनतंत्रवादी भावना का प्रसार हुआ । नागरिक स्वतंत्रता, वोट देने का अधिकार, कारों से नागरिकों को मुक्ति आदि के अलावा मध्यवर्ग की उन्नति का मार्ग खुल गया । जीवन के हर क्षेत्र में इस क्रांति का प्रभाव हुआ । शिक्षा जैसे अन्य विषय भी सरकार के हाथ में आ गये । फ्रांस में राष्ट्रीयता का प्रादुर्भाव हुआ ।[2] वोलटेयर, डिडरो और रूसो की रचनाओं के द्वारा राज्यक्रांति पोषित और प्रोत्साहित हुई ।[3]

---

1. C.J.H.Hayes - Political and Cultural history of Modern Europe P.52
2. आधुनिक साहित्य में व्यक्तिवादी चेतना - डॉ. बलभद्र तिवारी - पृ. 11.
3. The Revolution was nourished and inspired by Voltaine Diderot and J.J.Rousseau, whose works formed so to speak a thick and tall plantation in whose shadows, no other growth was possible The History of Nations, Andre Lebon, Modern France - P.124

क्रान्तियों का समाज पर प्रभाव :-

किसी भी क्रान्ति का समाज पर प्रभाव पड़ता है । अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियों से व्यक्ति को अपना महत्व समझने का मौका मिला । अपनी इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और अनुभव शक्ति के द्वारा वह आवश्यकता के अनुसार अपने को बदलने को सीखता है ।[1] व्यक्ति की उन्नति समाज की उन्नति है और समाज व्यक्तियों का संगठित स्वरूप है । इसलिए परिस्थितियों की मांग के अनुसार व्यवहार करने के लिए वह मज़बूर हो जाता है ।

वास्तव में इन क्रांतियों का वांछित प्रभाव नहीं पड़ा था । लेकिन इस बात का हम तिरस्कार नहीं कर सकते कि औद्योगिक क्रांति तक समाज में नये ढंग से सोचने की प्रक्रिया आरंभ हुई थी । नवीनता की चरम सीमा फ्रांसीसी क्रान्ति से संभव हुई ।

औद्योगिक क्रांति

औद्योगिक क्रांति विश्व की महत्वपूर्ण क्रांतियों में से एक है । इसके द्वारा समाज का ढांचा ही बदल गया । जागीरदारी प्रथा के उन्मूलन से नये आविष्कारों और नवीन पद्धतियों का सूत्रपात हुआ । प्रारंभिक काल की अपेक्षा मनुष्य अपने व्यर्थ परिश्रम से मुक्त होने लगा । हज़ारों वर्षों से वह जो काम करता आया उसमें परिष्कार आने लगा ।

इस क्रांति का सूत्रपात इंग्लैंड में हुआ था । सन् 1750 से लेकर

---

1. A Manual of Psychology - S.C.Dutta - P.1

1815 तक की लंबी अवधि में औद्योगीकरण का क्रमिक विकास हुआ । इस के लिए राजनीति या पार्लियामेंट उत्तरदायी नहीं है बल्कि इसको संभव बनाने में सामूहिक प्रयास ही कारणभूत है । जैसे, "यदि अंतिम शताब्दी में सभ्य जीवन का संपूर्ण लौकिक ढाँचा बदला है, तो इसके लिए हम उन लोगों के सामूहिक प्रयासों के ऋणी हैं, जिन्होंने विज्ञान का विकास और उपयोग किया है ।"[1]

औद्योगिक क्रांति का परिणाम :-

औद्योगीकरण से ब्रिटन में जितना अधिक विकास उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ उससे अन्य राष्ट्रों को भी प्रोत्साहन मिला । समस्त विश्व को ही इस व्यवस्था ने प्रभावित किया ।[2] इस क्रांति का प्रथम पक्ष वस्तुओं के उत्पादन से

---

1. Warner and Marten - The ground work of British History, Section III - P.584.
2. The Individualization of the great powers one after another has been one of the striking features of the nineteenth century and it is in this direction that the influence of Great Britain has been all important. Her inventions have helped to change agricultural into industrial States and have been instrumental in bringing the whole world into a common System of economic relationships - The Industrial and commercial Revolutions in Great Britain during the Nineteenth Century - L.C.A.KNOWLES - P.17

और द्वितीय मानव मस्तिष्क से संबद्ध है । मशीनीकरण के कारण कारीगरों के सामने बेकारी की समस्या उपस्थित हुई ।[1] कल कारखानों में जो मजदूर काम करते थे उनको कम पारिश्रमिक दिया जाता था । आर्थिक शोषण के कारण साधारण जनता को कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पडा ।

सामन्तवाद का विघटन और पूँजीवाद का उदय :-

औद्योगिक क्रांति का विस्फोट जब यूरोप में हुआ तो समाज का ढाँचा ही झकझोर हो गया । शहरों की स्थापना भी नये नये उद्योगों के साथ हुई । यूरोप के हर राष्ट्र में आर्थिक विकास के लिए एकदम होड चल रहा था । शहरीकरण के कारण सामन्तवाद का धीरे धीरे विनाश होने लगा । मज़दूरों की संख्या बढती गयी और संयुक्त परिवार प्रथा का भी अन्त हो गया । फलस्वरूप पूँजीपति और मज़दूर जैसे दो वर्गों का उदय हुआ । वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण पूँजीपतियों ने अपने अपने कारखाने स्थापित किए । इन कल कारखानों में काम करने के लिए पुरुषों के साथ स्त्रियों और बच्चों को भी जाना पडा । इनके साथ मालिकों ने बडा अन्याय किया । नौकरी के अनुसार उचित रूप से उनको वेतन ही नहीं मिला और इनका रहन सहन और खाने-पीने की व्यवस्था भी

---

1. Sudden unemployment represented still another threat, workers, such as many handloom weavers, suffered when their trade was displaced by machinery - Encyclopeadia Americana Vol.15 - P.126

खराब रही ।[1] ऐसी हालत में व्यक्तिवादी विचारों का उभरना स्वाभाविक था । प्रसिद्ध आलोचक इयान वाट के शब्दों में "व्यक्तिवादी चिन्तन के उदय के पीछे औद्योगिक पूँजीवाद और प्रोटेस्टाण्टिज्म का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।[2]

औद्योगिक क्रांति से अनेक लाभ हुए परन्तु समाज दो वर्गों में विभाजित हुआ । शहरीकरण के प्रवाह में बहने की लालसा लेकर जो लोग उद्योग की खोज में निकले उनमें मज़दूरों की स्थिति भयानक होने लगी । पूँजीवादी व्यवस्था

---

1. Although the Industrial Revolution brought obvious advantages to mankind in the long run, it also brought harm to many of the people who lived through it. Industrial accidents were frequent. Factory environment were often unhealthy. Lightning was frequently bad, the air was often noxious, hours were too long, physical work was frequently so repetitive and fittered as to be almost deforming workers did not receive enough time to eat a midday meal - Encyclopeadia Americana Vol.15 - P.126

2. It is generally agreed that modern society is uniquely individualist in these respects and that, of the many historical causes for its emergence two are of supreme importance- the rise of modern industrial capitalism and the spread of protestantism - I an Watt - The rise of the novel - P.62.

में साधारण मानव का कोई स्थान नहीं रहा । उसकी चेतना पर कुठाराघात हुआ । व्यक्ति अपने अस्तित्व पर सोचने लगा । औद्योगिक क्रांति का उद्देश्य व्यक्ति का जीवन सुखद बनाना था परन्तु पूँजीपतियों ने इससे ज़्यादा फायदा उठाया । फलस्वरूप व्यक्ति का स्थान समाज में नगण्य रह गया । स्पष्ट है कि व्यक्तिवाद की भूमिका बनाने में औद्योगिक क्रांति का भी महत्वपूर्ण स्थान है ।

दूसरा अध्याय

पूर्व प्रयोगवादी युग की कविता में व्यक्तिवादी चेतना का स्वरूप

जैसे नगेन्द्र ने सूचित किया है कि साहित्य के इतिहास में काल का सीमांकन सबसे अधिक जटिल समस्या है ।[1] यह इसलिए है कि कोई भी वैज्ञानिक सत्य के रूप में यह बताया नहीं जा सकता कि अमुक साहित्यिक प्रवृत्ति कब समाप्त होती है, और नई की शुरूआत कब होती है । इसलिए साहित्य के इतिहास के संदर्भ में काल-निर्णय लचीला रहता है ।

हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल की शुरूआत सामान्यत: रीतिकाल के अन्त में मानी जाती है । यानी सन् 1857 को यह गौरव दिया जाता है । लेकिन हिन्दी साहित्य में आधुनिकताबोध के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का रचनाकाल सन् 1868 से होता है । इस अंतर्विरोध के होते हुए भी अधिकांश इतिहासकार 1857 को आधुनिक काल का प्रारंभिक बिन्दु मानते हैं ।[2]

आधुनिक काल को भारतेन्दुकाल, द्विवेदीकाल, छायावाद काल, छायावादोत्तर काल में बाँटा भी गया है ।[3] आधुनिक काल की इन सभी काव्य पद्धतियों में व्यक्तिचेतना किसी न किसी प्रकार अवश्य उजागरित हुई है । उपर्युक्त प्रत्येक कालखण्ड की कविता के बारीकी विश्लेषण से ही व्यक्ति चेतना और उसके क्रमिक विकास का सही पता मिलता है । आगे हम एक एक होकर प्रत्येक काव्यपद्धति में सम्मिलित व्यक्ति-चेतना को उन्मीलित करने की कोशिश करेंगे ।

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 437
2. वही - पृ. 437
3. वही - पृ. 439

भारतेन्दु युग :-

सन् 1857 से लेकर 1900 तक का समय भारतेन्दु युग है ।[1] इस काल के परिवेश के संबंध में सुबासकुमार ने एक महत्त्वपूर्ण बात लिखी है - एक ओर अशिक्षा और अन्ध संस्थाओं का जीर्ण शीर्ण प्राचीन जिन्दा था और दूसरी ओर विदेशी शिक्षा और विदेशी संस्कृति के चकाचौंध के व्यामोह से ग्रस्त और दिग्भ्रमित नयी पीढ़ी थी । भारतेन्दु ने इस दोरंगी अवस्था के प्रति लोगों को सावधान किया और इन दोनों अभिशापों से उबरने की बात भी की ।[2] इस युग में कवियों ने भारतेन्दु के नेतृत्व में साहित्य को ज़मीन को सीधा करने का प्रयास किया । इन कवियों में श्रीधर पाठक, राधाकृष्णदास, राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद, राजा लक्ष्मणसिंह, अयोध्याप्रसाद खत्री आदि प्रमुख हैं । उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषयों पर बहुत कुछ लिखा । विदेशी सरकार के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करके समाज सुधार करने में वे सफल भी हुए । इसलिए देशप्रेम, सामाजिक दुरवस्था और कुप्रथाओं का खण्डन स्त्री शिक्षा और स्वतंत्रता आदि सामाजिक विषयों पर ही उनकी रचनाएँ ज़्यादातर केन्द्रित हैं ।[3]

फिर भी सूक्ष्म विश्लेषण से हमें पता चलता है कि भारतेन्दु युग में व्यक्तिचेतना का बीजावपन भी हुआ था । क्योंकि नवोत्थान की प्रवृत्तियाँ और परंपरा का निषेध भारतेन्दु युग की खास विशिष्टताएँ रही थीं । आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन आदि संस्थाओं के साथ भारतेन्दु मण्डल के कवियों का गहरा ताल्लुक रहा था । भारतेन्दु ने ब्रजभाषा के बदले खड़ीबोली को पद्य भाषा बनाने के कार्य में भी सक्रिय योगदान दिया था ।[4] छन्द के क्षेत्र

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - पृ. 435
2. सुबासकुमार - आधुनिक हिन्दी कविता - पृ. 104
3. शिवकुमार शर्मा - हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - पृ. 455
4. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 102

में भी क्रान्ति लायी गई थी । जो साहित्य पहले केवल विशिष्ट वर्ग के लिए होता था, उसकी सीमाएँ बढ़ा दी गई, यानी जन साहित्य का सृजन भी होने लगा । इसी कारण भारतेन्दु ने निजी भाषा की महत्ता पर जबरदस्त ज़ोर भी दिया -

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ।"

भाषा में नवीनता लाने के लिए भारतेन्दु का मन अत्यधिक आतुर रहा कि उन्होंने अरबी फारसी शब्दों की भी स्वीकृति दी । राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद से प्रेरित होकर नये शब्दों की तलाश भी की । उन्होंने दिलो दिमाग में यह ज़रूर चाहा था कि लोग अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग कर अपनी भाषा का पालिश करें ।[1]

भारतेन्दु ने जान बूझकर परंपरागत मार्ग को छोड़ने तथा नवीन राह को अपनाने का प्रयास किया था । लेकिन उन्होंने परंपरा को पूर्णतः तिलांजली नहीं दी थी । जिस समय वे साहित्य क्षेत्र पर उतर आए थे, कविता पुरानी राह पकड़ी हुई थी व्रजभाषा का दबदबा था । उन्होंने इस भाषा को सुधारने का प्रयत्न किया और खड़ीबोली को भी स्थान देने का महत्वपूर्ण काम भी किया । गद्य के क्षेत्र में उन्होंने संपूर्ण रूप में खड़ीबोली को अपनाया था । भारतेन्दु मण्डल के सभी कवियों की अपनी निजी शैली थी । निजी शैली में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी और जनता में नवीन संस्कृति के प्रति रुचि बढ़ाने की कोशिश भी की । यूरोप के साहित्यकारों की भाँति भारतेन्दुयुगीन

---

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पृ. 192

साहित्यकार व्यक्ति स्वातंत्र्य की बुलन्द नहीं की लेकिन स्वच्छन्द परिवेश के प्रति उनकी रुचि रही । यह रुझान[1] उन्होंने परंपरा के निषेध या उसके प्रति उदासीनता के रूप में जाहिर भी किया ।

भारतेन्दु में ही अन्य कवियों की तुलना में स्वच्छन्द वृत्ति साफ नज़र आती है । घनानन्द, आलम, ठाकुर आदि कवियों की तरह भारतेन्दु की रचनाओं में प्रेम की स्वच्छन्दता है, नूतन और आंतरिक भावनाओं की सघन अभिव्यक्ति भी मिलती है । उन्होंने अपनी गीत पद्धति को जन-गीतों के सम्मुख लाकर खड़ा किया था । नीलदेवी के "सोओ सुख निंदिया प्यारे ललन" और "प्यारी बिन रूटत न कारी रैन" जैसे गीतों में वैयक्तिकता की पूर्ण अभिव्यंजना हुई है जो इन्हें एकदम नवीन भी बनाता है । यहाँ तक कि उन्हें अपने विचार स्वातंत्र्य के कारण सरकार का कोप भाजन भी बनना पड़ा था ।[2] रूढ़ियों को कुचलकर नवीन ढंग की रचनाओं के सृजन में भारतेन्दु युग के बदरीनारायण उपाध्याय, चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र आदि भी सम्मिलित हैं । इन्होंने प्रबन्ध काव्य शैली को छोड़कर मुक्तक काव्य परंपरा को अपनाया था । छन्दों के प्रयोग में भी परिवर्तन हुआ । परंपरागत छन्दों के स्थान पर नवीन छन्दों को विशेष स्थान मिला ।

निष्कर्षत: यही कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में व्यक्तिवाद के समस्त लक्षण और आयाम उपलब्ध नहीं होते हैं । लेकिन परंपरा से हटने की आकांक्षा, नवीनता के प्रति रुझान, सुधारों के प्रति अदम्य लालसा और लगन में

---

1. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 91
2. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - पृ. 192

व्यक्तिवाद की झलक प्राप्त होती है जिसका बाद में हू-ब-हू विकास भी हो गया था ।

<u>द्विवेदी युग :-</u>

इस युग में व्यक्तिवाद के नये आयाम नज़र आते हैं । भारतेन्दु युग से बढ़कर स्वच्छन्द वृत्ति इस युग में द्रष्टव्य है । पहली बार हिन्दी साहित्य के इतिहास में पद्य और गद्य को समान रूप से काव्य का माध्यम स्वीकार किया गया । आचार्य द्विवेदी ने खुली घोषणा की कि गद्य और पद्य की भाषा पृथक पृथक नहीं होनी चाहिए । यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा व्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी । इसलिए कवियों को चाहिए कि वे कम से कम गद्य की भाषा में कविता करना प्रारंभ करे ।[1] द्विवेदीजी के इस ऐलान के बाद भी पूरे युग को खड़ीबोली की प्रतिष्ठा के लिए परिवेश के खिलाफ कठिन संग्राम करना पड़ा था ।

द्विवेदी ने कवियों को नये विषयों को आत्मसात् करने की प्रेरणा दी । विभिन्न विषयों पर फुटकर रचनाएँ करने का निर्देश भी दिया । आदर्श चरित्रों को लेकर प्रबन्ध काव्य रचना का आह्वान भी किया । वाल्मीकि और व्यास की भांति राम और कृष्ण को द्विवेदी युगीन कवियों ने पुनः आदर्श का बाना पहनाकर प्रस्तुत किया । लेकिन इन कवियों की दृष्टि अवतार तक सीमित नहीं रही थी । इन्होंने विश्व की कल्याण भावना और लोक सेवा को ईश्वर का आदेश समझा । ईश्वर-साक्षात्कार के माध्यम के रूप में इनकी प्रस्तुति की ।[2]

---

1. द्विवेदी कवि कर्तव्य - उदयभानुसिंह द्वारा उद्धृत - पृ. 279
2. वही - पृ. 295

हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त ने परंपरागत चारित्रिक विशिष्टताओं को तिलांजलि करके नवयुग के मुताबिक राधा और ऊर्मिला के चरित्र को नये रूप और रंग दिये । प्रियप्रवास की राधा स्वयं सेविका है और लोककल्याण भावना से लैस व्यक्तित्व है । उसके लिए सुख और दुख दोनों बराबर है । उसका प्रेम निस्वार्थ है । वह एकांगी भी नहीं । विरह में तडपते वक्त भी वह उदारशील है । वह पवन को कृष्ण के पास सीधे न भेजती है । पवन से उसका अनुरोध है कि वह जाते वक्त मार्ग के व्यथित व्यक्तियों की मदद करें ।[1] इस काव्य में राधा का चरित्र पूर्णतः लौकिक एवं मानवीय हैं ।

गुप्तजी ने ऊर्मिला के चरित्र-प्रणयन में भी मौलिकता दिखायी है । इस संदर्भ में डॉ. कमलकान्त पाठक ने उल्लेख किया है कि साकेत रचना के मूल में व्यक्तिवाद का स्वर समत्व तथा बन्धुत्व का आदर्श है ।[2] गुप्तजी ने खुद घोषणा की है कि ऊर्मिला के विरह वर्णन की विचारधारा में भी मैं ने स्वच्छन्दता से काम लिया है ।[3] यद्यपि ऊर्मिला के मन में लक्ष्मण के प्रति अटूट आस्था है, उसको याद में अहर्निश बेचैन रहती है, फिर भी उसमें आत्म-सम्मान की भावना भरपूर है, वह अपने को तुच्छ एवं असहाय मानती नहीं है । उसको भी अपनी हैसियत है । यदि लक्ष्मण का त्याग सफल है तो ऊर्मिला का अनुराग निष्फल भी नहीं है -

"तुम्हारे हँसने में हैं फूल, हमारे रोने में मोती ।
मानती हूँ, तुम मेरे साध्य,

---

1. हरिऔध - प्रियप्रवास -प्रथम सर्ग - पृ. 4
2. मैथिलीशरण गुप्त - व्यक्ति और काव्य - पृ. 504
3. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - भूमिका - पृ. 3

अहर्निश एकमात्र आराध्य
साधिका मैं भी किन्तु अबाध्य
× × × ×
सफल हो सहज तुम्हारा त्याग
नहीं निष्फल मेरा अनुराग
सिद्ध है स्वयं साधना भाग
सुधा क्या, क्षुधा जो न होती "[1]

यशोधरा के चरित्र के माध्यम से गुप्तजी ने नारी-चरित्र की उदात्तता की भी अभिव्यंजना की है -

"दीन न होगी ये, सुनो हीन नहीं नारी कभी
मूर्त - दया - मूर्ति, वह मन से शरीर से "[2]

दरअसल द्विवेदी युग पूर्णत: एक आदर्श का पीछा कर रहा था। इसीलिए डॉ. बलभद्र तिवारी ने लिखा है कि द्विवेदी युग में आदर्शात्मक व्यक्तिवाद का प्रचलन रहा है।[3] उनकी राय में आदर्शात्मक व्यक्तिवाद नवीनता और आदर्शों के पालन में निर्भित होता है।[4] और स्वतन्त्रता द्विवेदीयुगीन कवियों की अदम्य आकांक्षा ही नहीं, उच्च आदर्श भी रहा था। उन्होंने अपने मन का मंथन कर समझ लिया था कि पराधीन को सपने में भी सुख हासिल नहीं होता। स्वतंत्रता की आकांक्षा के कारण उसकी प्राप्ति के लिए विभिन्न राहें अपनाने के लिए

---

1. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत भूमिका - पृ. 254
2. मैथिलीशरण गुप्त - यशोधरा - पृ. 142
3. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 114
4. वही - पृ. 114

वे मज़बूर हो गए । उन्होंने दुख से रोकर उससे मुक्त करने के लिए शासकों से प्रार्थना तक की है -

"फरियाद लगाते जायेंगे, दुख दर्द सुनाते जाएंगे
हम अपना धर्म निभाएंगे, तुम अपना काम करो न करो ।"[1]

अपनी पतित अवस्था से ऊपर उठाने के लिए देशवासियों को अतीत की याद दिलोकर जागरित करने की जबरदस्त कोशिश भी की गई -

"हम कौन थे क्या हो गए अब और क्या होंगे अभी -
आओ विचारे आज मिलकर वे समस्याएँ सभी ।"[2]

कहीं भुजशक्ति के द्वारा क्रान्ति करने का आह्वान भी हुआ है । सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ इस बात को साक्ष्य हैं ।

द्विवेदीयुगीन कवियों ने प्रेम भाव के भी आदर्श रूप को ही आत्मसात् किया है । राधा सिर्फ प्रेमिका नहीं है, वह सेविका भी है । ऊर्मिला अपने को प्रेम-पंथ की बाधा बनने से रोकती है । अपने दृगजल धार से अवधि शिला को काटती हुई प्रियतम की प्रतीक्षा में बरसों तक रहने के लिए वह तैयार है -

"डूब बची लक्ष्मी पानी में, सती आग में पैठ
जिए ऊर्मिला, करे प्रतीक्षा, सहे सभी घर बैठ
विधि से चलता रहे विधान । हे मेरे प्रेरक भगवान् ।"[3]

प्रेम जीवन की अद्भुत शक्ति है । उसके बिना जीवन निस्सार है । रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम की महत्ता पर लिखा है -

---

1. संपूर्णानन्द - डॉ.उदयभानुसिंह द्वारा उद्धृत - महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - पृ.30।
2. मैथिलीशरण गुप्त - भारत भारती - पृ. 28
3. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - पृ.26।

"गंधविहीन फूल है जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक
ईश्वर का प्रतिबिंब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक ।"

कवियों ने प्रकृति चित्रण में भी स्वच्छन्दता एवं नवीनता दिखाई है । प्रकृति का बारीकी पर्यवेक्षण करते हुए उसके उपदेशात्मक एवं उद्बोधनात्मक रूपों को ही ज़्यादातर प्रस्तुत भी किया गया है । जैसे -

"नहलाती है नभो की वृष्टि
अंग पोंछती आतप सृष्टि
करता है शशि शीतल दृष्टि
देता है ऋतुपति श्रृंगार
ओ गौरव गिरि, उच्च उदार ।"[1]

प्रकृति का मानवीकृत रूप भी "प्रियप्रवास" और ""साकेत" में भरपूर मिलता है -

"विविध पवन ही था, आ रहा जो उन्हीं सा,
यह धन-रव ही था, छा रहा जो उन्हीं सा,
प्रिय सदृश हंसा, जो नीप ही था कहाँ वे ।
प्रकृत सुकृत फैले, आ रहा जो उन्हों सा -"[2]

अतः यह बात स्पष्ट जाहिर है कि द्विवेदी युग में स्वच्छन्दतावाद जो व्यक्तिवाद का ही अभिन्न आयाम है, आदर्शवाद का बाना पहनकर अवतरित हुआ है । इस स्वच्छन्द एवं अबाध वृत्ति के कारण ही द्विवेदी युग में गद्यसाहित्य का आविर्भाव और विकास हुआ था । यहाँ तक कि बंगला के प्रसार और अंग्रेज़ी के सोनेट तक का हूबहू प्रचार भी हुआ । द्विवेदी युगीन यही स्वच्छन्दतावाद ही बाद में छायावादी युग में पल्लवित होकर बृहद भी बना था ।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त - साकेत - पृ. 216
2. वही - पृ. 232.

छायावाद :-

हिन्दी साहित्य के रोमान्टिक उत्थान की काव्यधारा के रूप में छायावाद का महत्वपूर्ण स्थान होता है । इसका आरंभ और विकास सन् 1918 से लेकर 1936 तक रहा । इस पर विद्वानों के बीच मतभेद हैं । सुबासकुमार की मान्यता है कि 1920 के आसपास§1916 या 18 से ही§ 1935-36 तक चलनेवाली हिन्दी की एक साहित्यिक काव्यप्रवृत्ति छायावाद के नाम से अभिहित हुई §1§ जो भी हो छायावाद वास्तव में द्विवेदीयुगीन काव्य की एकरसता की प्रतिक्रिया है । प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं की छाया में पडी मानवजाति के सामने अनेक समस्यायें थीं । उनका विघटित व्यक्तित्व कवियों को सताने लगा । इस संदर्भ में डॉ. ओम प्रकाश अवस्थी का कथन संगत लगता है -"विश्वयुद्ध की विभीषिका ने मानवजीवन के शाश्वत मूल्यों को तिरोहित किया और सर्वत्र कुण्ठा, निराशा, घुटन का स्वर व्यापक रूप में चला ।"[1] इस महानाश की सूत्रधारिणी हुई "मृत्यु" । मानव की इस भयावह स्थिति को देखकर मनुष्य ने अपने आपको संत्रस्त एवं अकेला महसूस किया । इसलिए अपने बचाव और भाषा के लिए उसने वैयक्तिकता का आश्रय ग्रहण किया ।"[2]

मानव को इस हालत से मुक्त करने की वजह से कतिपय कवियों ने प्रकृति की खोज में शरण ली । साथ ही अपनी अतृप्त वासनाओं को वाणी भी दी । इस प्रकार कविता का ढाँचा द्विवेदीयुग की अपेक्षा परिवर्तनशील हो गया ।

---

1. सुबासकुमार - आधुनिक हिन्दी कविता - पृ. 107
2. डॉ.ओम प्रकाश अवस्थी - नई कविता रचना प्रक्रिया - पृ. 56

छायावाद के महान कवि हैं प्रसाद, निराला, पंत एवं महादेवी वर्मा । उन्होंने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों का स्वच्छन्द वर्णन किया है । परंपरा से कविता कामिनी को हटाकर उसे नूतन रूप देने का प्रयास भी इनमें विद्यमान हैं । छायावाद की परिभाषा देते हुए डॉ. नामवरसिंह ने लिखा है कि "छायावाद सामान्य रूप से भावोच्छ्वास प्रेरित स्वच्छन्द कल्पना वैभव की वह स्वच्छन्द प्रवृत्ति है जो देश काल गत वैशिष्ट्य के साथ संसार की सभी जातियों के विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा-आकांक्षा में निरन्तर व्यक्त होती रही है ।"[1]

स्वच्छन्द रूप से कवितायें लिखने की प्रवृत्ति के कारण इस युग की काव्यप्रणाली को स्वच्छन्दतावाद नाम भी पड़ा है जो पूर्णतः व्यक्तिवाद की तीव्रता का सूचक है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ही इस युग की काव्यधारा को स्वच्छन्दतावाद नाम दिया था । उनके अनुसार प्रकृतिप्रांगण के चर अचर प्राणियों का रागपूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता-व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुख में उनके साहचर्य की भावना ये सब बातें स्वाभाविक स्वच्छन्दता के पथ चिह्न हैं ।[2]

छायावाद युग की प्रवृत्तियों में व्यक्तिवाद की अहंभूमिका है । यानी छायावाद व्यक्तिवाद की कविता है । व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति छायावादी कवियों की प्रमुख विशेषता है । पहले वे प्रकृति के आश्रय लेने लगे थे । धीरे धीरे शक्ति संचय करके समाज की रूढ़ियों के प्रति अपना वैयक्तिक विद्रोह प्रकट करने में वे आनन्द का अनुभव करने लगे । इनका विषय रहा "आत्मकथा" और उन्होंने "मैं" शैली अपनायी ।[3] आँसू का आरंभ कवि की विरह वेदना की

---

1. डॉ. नामवर सिंह - आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ. 15
2. वही
3. वही - पृ. 22

अभिव्यक्ति से हुआ है -

इस करुण कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती ।[1]

इसी प्रकार निराला ने भी स्वीकार किया है कि "मैं ने मैं" शैली अपनायी -

मैं ने मैं शैली अपनाई,
देखा एक दुखी निज भाई
दुख की छाया पडी हृदय में,
झट उमड वेदना आई ।[2]

महादेवी का काव्य अधिकतर एकांतिक है अत: वह व्यक्तिवादी सीमा से बाहर नहीं जाता ।[3] प्रसाद का आँसू, पंत का उछ्वास और आँसू व्यक्तिवाद के सुन्दर नमूने हैं । इन सारी कविताओं में वैयक्तिक सुखदुख की अभिव्यक्ति है । कवि का "मैं" है और कवि का स्वर प्रत्येक संघर्षरत व्यक्ति का स्वर है ।

छायावादी कवि रीतिकालीन काव्य शास्त्रीय परंपरा सौन्दर्यबोध एवं चमत्कारप्रियता से समझौता न कर सके क्योंकि वे मुक्ति के आकांक्षी थे । पंतजी ने लिखा है -"हम ब्रजभाषा की जीर्ण शीर्ण छिद्रों से भरी छींट की पुरानी चोली नहीं पहनते, उसकी संकीर्ण कारा में बन्दी होकर हमारी आत्मा वायु की शून्यता

---

1. प्रसाद - आँसू - पृ. 7
2. सं. डा. राममूर्ति शर्मा - युग कवि निराला - पृ. 27
3. डा. बलभद्रतिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 180.

के कारण सिसक उठती है, हमारे शरीर का विकास रूक जाता है ।"[1] अतः पुरानी मान्यताओं के प्रति विद्रोह और नवीनता की खोज इस कथन से स्पष्ट हो जाता है ।

जैसे सूचित किया गया है छायावादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों में वैयक्तिकता का स्थान सबसे ऊँचा है । इस प्रवृत्ति ने छायावादी कवियों को विद्रोहशील बना दिया था । अपने समाज एवं परंपरा के प्रति वे सजग रहते थे । रूढियों के प्रति विद्रोही भावना उनकी सबसे बडी विशेषता रही ।

कवि अपने अन्तर्जगत एवं बाह्यजगत के अनुभूत सत्य को अहं के माध्यम से "मैं" शैली में प्रस्तुत करने को अधीर है किन्तु छायावादी काव्य का अहं अपने पाठक के साथ समझौता करता है । अपने पुराने रूढिबन्धनों के बदले नवीनता लाने में वे सफल हुए । आत्मनिष्ठता में अहं की इस वृत्ति के विकसित होने का एकमात्र कारण कवि के स्वस्थ विचारों का परिणाम है । वह पुरातन रूढिबन्धनों को दूर फेंककर नवीनता को स्वीकार करते चला है इसलिए वहाँ व्यक्तिनिष्ठ चेतना का आगमन हुआ ।[2] महादेवी ने भी छायावाद में स्वानुभूति की प्रमुखता पर लिखा है -"इस व्यक्तिप्रधान युग में व्यक्ति के सुखदुख अपनी अभिव्यक्ति के लिए आकुल थे । अतः छायावाद का काव्य स्वानुभूति-प्रधान होने के कारण वैयक्तिक उल्लास-विषाद की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बन सका ।"[3]

छायावादी कविता का पूर्वार्द्ध प्रकृति का स्वच्छन्दतावादी वर्णन है तो उत्तरार्द्ध में कवियों के निजी दुखदुख की गाथा मिलती है । डॉ. राजेन्द्र मोहन

---

1. पंत - पल्लव की भूमिका - पृ. 11
2. डॉ. दयानन्द शर्मा - आधुनिक कवि और उनका काव्य - पृ.
3. महादेवी - साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध - पृ. 88.

भटनागर ने लिखा है कि छायावादी कवि ने अपने अनुभूत सुखदुखों का हृदयस्पर्शी अपने काव्य में किया है ।[1] फिर भी उनका मत सुख की अपेक्षा दुख में ही अधिक तल्लीन रहा है ।

डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि छायावाद मध्यवर्ग की व्यक्तिवा स्वातंत्र्य भावना और विद्रोह का काव्यात्मक प्रतिफलन था ।[2] व्यक्तिनिष्ठत और आत्माभिव्यंजना ही छायावाद के सर्वप्रमुख लक्षण हैं । व्यक्तिवादी होने कारण कवि अपने को ही केन्द्र में रखता है -"छायावादी कवि जगत के केन्द्र में को ही स्थित पाता था क्योंकि वह एक ही चेतना को सर्वत्र व्याप्त पाता था वह चेतना उसके अपने ही अहं की चेतना थी ।[3]

छायावादी काव्यधारा के अधिकतर कवियों ने अहं की अभि कल्पना के सहारे की है । महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा ने आध्यात्मिक अनुभूतियों को भी कल्पना के माध्यम से व्यक्त किया है । व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के विकास के कारण छायावादी कवि सौंदर्य को वस्तुओं में न ढूँढता है बल्कि द्र की सौंदर्य चेतना में निहित मानता है ।[4] ऐसी व्यक्तिवादी विशेषताओं के का छायावाद की काव्य दृष्टि कलावादी बन गई थी ।

---

1. राजेन्द्र मोहन - आधुनिक हिन्दी कविता और विचार - पृ. 97
2. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - पृ. 94
3. वही - पृ. 114
4. लक्ष्मीनारायण "सुधांशु" [सं.] हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास -भाग । पृ. 480.

इस प्रकार छायावादी काव्यचेतना के विश्लेषण से स्पष्ट हो जा है कि छायावाद व्यक्तिवादी चेतना का काव्य है । आगे हम प्रत्येक दिग्गज कवि की कविता में उन्मीलित व्यक्तिवादी चेतना की विशेषताओं का अंकन करेंगे ।

प्रसाद :-

प्रसाद के काव्य में व्यक्तिवादी चेतना का समग्ररूप अभिव्यक्त है उनका प्रसिद्ध काव्य आँसू में वेदना के कई दिलकश चित्रण मिलते हैं । यद्यपि व्यक्ति सुख ही चाहता है फिर भी प्रसाद ने सुख और दुख दोनों से समझौता करते हुए यों लिखा है -

मानव जीवन वेदी पर परिणय हो विरह मिलन का
सुख दुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का मन का ।[1]

वेदना की तीव्र अनुभूति की मार्मिक अभिव्यक्ति भी उन्होंने की है -

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति सी छायी
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आयी ।[2]

कवि की वैयक्तिक अनुभूतियों की खरी अभिव्यक्ति के रूप में हम आँसू की इन पंक्ति का मूल्यांकन कर सकते हैं -

छलना थी फिर भी उसमें, मेरा विश्वास बना था
उस माया की छाया में कुछ सच्चा स्वयं बना था ।[3]

प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ एवं अन्तिम कृति "कामायनी" व्यक्तिवाद का सच्चा चित्रण प्रस्तुत करती है । इस काव्य में मनु के मानसिक विकास और बाह्य संघर्ष

---

1. प्रसाद - आँसू - पृ. 46
2. वही - पृ. 14
3. वही - पृ. 24

आज के व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व करते हैं । मनु आधुनिक व्यक्तिवादी का प्रतिनिधि है । "संघर्ष" सर्ग में व्यक्तित्व की प्रधानता और उसके अधिकारों की आकांक्षा को प्रसादजी ने यों चित्रित किया है -

"आज प्रजापति होने का अधिकार यही क्या ?
अभिलाषा मेरी अपूर्ण ही सदा रहे क्या ?
मैं सबको वितरित करता ही सतत रहूँ क्या ?
कुछ पाने का प्रयास है पाप सहूँ क्या ?"[1]

मनु अपनी वासनाजन्य अतृप्ति के कारण मानसिक दुर्वृत्तियों का शिकार हो जाता है । उसमें अहंवाद और विरोध का भाव पैदा होता है । जैसे वाजपेयी ने सूचित किया है कि "ईर्ष्या में दूसरे की सुखसुविधा के प्रति अनुदार संकीर्णता और विरोध का भाव रहता है । मनुष्य अहं केन्द्रित हो जाता है ।"[2] जब श्रद्धा अपने शिशु की बुरी हालत पर शिकायत करती है तो मनु धधक उठता है और खीझकर श्रद्धा से कहता है -

तुम फूल उठोगी लतिका सी
कंपित कर सुख-सौरभ-तरंग
मैं सुरभि खोजता भटकूँगा
वन वन बन कस्तूरी कुरंग[3]

मनु को मालूम हुआ कि नवागन्तुक पर श्रद्धा का पूरा ध्यान जायेगा, यानी अपनी अनुपस्थिति उसे न खलेगी तो उसने यह भी कहा -

यह ज्वलन नहीं सह सकता मैं
चाहिए मुझे मेरा ममत्व

---

1. प्रसाद - कामायनी (संघर्ष सर्ग) - पृ. 206
2. नन्द दुलारे वाजपेयी - जयशंकर प्रसाद - पृ. 86
3. प्रसाद - कामायनी "ईर्ष्या सर्ग" - पृ. 165

इस पंचभूत की रचना में
मैं रमण करूँ बन एक तत्त्व [1]

मनु व्यक्ति स्वातंत्र्य का अभिलाषी है । उसकी अनादि वासना कभी मिटती नहीं "मैं कहूँ" का भाव उसके मन में जागृत हो जाता है -

मैं रहूँ, यह वरदान सदृश क्यों
लगी गूँजने कानों में ?
मैं भी कहने लगी मैं रहूँ
शाश्वत नभ के गानों में [2]

मनु स्वार्थी है । वह अपने को एकमात्र भोक्ता और शेष विश्व को भोग्य मानते हैं । [3] "संघर्ष" सर्ग में इडा मनु को यह समझाती है कि कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि सिर्फ वही भोक्ता या अधिकारी है । इससे स्वार्थ चेतना पैदा हो जाती है । यह स्वार्थ चेतना मानव को लक्ष्य के पीछे हटा सकती है । इसलिए इडा कहती है -

व्यक्तिचेतना इसीलिए परतंत्र बनी सी
राग पूर्ण, पर द्वेष-पंक में सतत सनी सी
नियत मार्ग में पद पद पर है ठोकर खाती
अपने लक्ष्य समीप श्रान्त हो चलती जाती । [4]

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वार्थ चेतना के साथ व्यक्तिचेतना भी निहित हुई है । सारस्वत प्रदेश में मनु प्रजापति है । लेकिन वह अपनी अतृप्त वासना का शिकार है । ऐसे पात्र का चित्रण करके प्रसादजी ने कामायनी काव्य में व्यक्तिवाद की ठोस भूमिका बनायी है । भारतवासियों के प्रतिनिधि के रूप में मनु के चरित्र को कवि ने नवीन ढंग से उतारा है ।

---

1. प्रसाद - कामायनी - पृ. 165
2. वही - पृ. 37
3. भगीरथ दीक्षित - कामायनी विमर्श - पृ. 148-149
4. प्रसाद - कामायनी - पृ. 205

व्यक्तिवाद को उकसानेवाली शक्ति अतृप्त वासना ही मान ली गयी है । इस वासना की पूर्ति के लिए जो तरसता है वह अपनी ही दाढी की आग बुझाना चाहता है । यानी वह अपनी वासनापूर्ति के लिए स्वार्थी बन जाता है और इसी वजह से समाज से विमुख हो जाता है । इतना ही नहीं अपने उद्देश्य के सम्मुख बाधाएँ देखकर समाज से विद्रोह करने के लिए भी तैयार हो जाता है । कभी कभी वह आत्मघात की भी धमकी देता है ।[1]

प्रसाद का "स्व" आँसू काव्य में सर्वत्र जागृत रहता है । डॉ.प्रेमशंकर के मतानुसार स्वानुभूति का व्यापक प्रसार कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियों को एक जीवनदर्शन के रूप में प्रस्तुत करता है । इससे कवि अधिक आशावादी हो जाता है । जिन आँसूओं को उसने केवल स्मृतियों के रूप में अपनाया था, उन्हें सृष्टि कल्याण में नियोजित करता है ।[2] यों प्रसाद में व्यक्तिचेतना ने समष्टि-कल्याण का उदात्त रूप हासिल किया है ।

निराला :-

छायावादी कवियों में विद्रोही भावना के कवि के तौर पर हम निराला को मानते हैं । लेकिन आत्मनिष्ठता उनकी कविता का अभिन्न आयाम है । उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में अपने संघर्षमय जीवन की पर्तों को पिरोने का महान प्रयास किया है । निराला के जीवन संघर्ष की गहराई "सरोज स्मृति" में मिलती है । अभावों के कारण वे अपनी बेटी सरोज के पालन पोषण के लिए कुछ भी कर न सके थे । पुत्री का निधन उसके व्यक्तित्व पर चोट पहुँचाता है -

---

1. डॉ. रामविलास शर्मा - संस्कृति और साहित्य - पृ. 38
2. डॉ. प्रेमशंकर - प्रसाद का काव्य - पृ. 149

"धन्ये । मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित कर न सका ।"[1]

निराला के मन की वेदना का आघात पाठकों के दिल पर भी पडता है । "सरोजस्मृति" में कवि के संघर्ष और पराजय का कटु गरल प्रवाह हम देख सकते हैं । अपनी असमर्थता पर तर्क करनेवाले कवि के रूप भी हम उनमें पाते हैं -

तू गयी स्वर्ग क्या यह विचार
जब पिता करेंगे मार्ग पार
यह अक्षम अति तव मैं सक्षम
तारूँगी कर गह दुस्तर तम ।[2]

सरोज का विवाह संपन्न करने के लिए निराला के पास पैसे नहीं थे । सास ने जब कहा कि बेटी की शादी करा लो तब अपनी व्यथा को निम्नलिखित पंक्तियों में उन्होंने अंकित किया है -

सुनकर गुनकर चुपचाप रहा,
कुछ भी न कहा, न अहो, न अहा ।
ले चला साथ में मुझे कनक
ज्यों भिक्षुक लेकर स्वर्ण-झनक
अपने जीवन की प्रभा विमल
ले आया निज गृह छायातम[3]

अपनी व्यथा-कथा को समाप्त करते हुए कवि सरोज की आत्मा की तर्पण के निमित्त अपना सबकुछ समर्पण करते हैं ।

हो इसी कर्म पर वज्रपात यदि, धर्म, रहे नत सदा माथ

---

1. निराला - सरोजस्मृति अनामिका - पृ. 122
2. वही, पृ. 122
3. वही, पृ. 132

इस पथ पर मेरे कार्य सकल हों भ्रष्ट शीत के से शतदल
कन्ये गत कर्मों का अर्पण, कर करता मैं तेरा तर्पण ।[1]

यों सरोजस्मृति में निराला ने अपनी संत्रस्त वैयक्तिक अनुभूतियों का खुला चित्रण किया है जो व्यक्तिचेतना का ही ज्वलंत सबूत है ।

"राम की शक्तिपूजा" में भी निराला के वैयक्तिक जीवन के कटु सत्यों का परोक्ष रूप में चित्रण किया गया है । निराला ने स्वयं अपने जीवन में अनेकानेक विरोधों का सामना किया था । अपनी पारिवारिक परिस्थितियों ने निराला को इतना अधिक गतिरोध और विरोध प्रदान किया था कि वे उनसे विक्षुब्ध हुए । लेकिन अपनी साधना के बल पर वे उनसे निरन्तर जूझते रहे । शक्तिपूजा के राम स्वयं निराला के ही प्रतीक है । रावण से लोहा लेने के लिए वे कटिबद्ध भी हैं । अपने जीवन भर उन्होंने जिन संघर्षों का सामना किया उनको निम्नलिखित पंक्तियों में सही अभिव्यक्ति दी है -

धिक् जीवन जो पाता ही आया है विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।[2]

राम को यकीन है कि वे रावण को हरा देंगे परन्तु रावण के पराक्रम एवं शक्ति के सामने राम का मन संशय में डूब जाता है । अपनी इस असमर्थता का परिचय निम्नलिखित पंक्तियों में मिल रहा है -

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय,
रह रह उठता जग जीवन में रावण-जय-जय

---

1. निराला -"सरोजस्मृति" अनामिका - पृ. 137-138
2. निराला - राम की शक्तिपूजा-अपरा- पृ. 54

जो हुआ नहीं आज तक हृदय रिपु दम्य, श्रान्त
एक भी, अयुत-लक्ष्य में रहा जो दुराक्रान्त,
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार ।[1]

फिर भी उनमें इतनी जिजीविषा है कि दुनिया की कोई भी शक्ति अपनी इच्छाओं के खिलाफ खड़ी नहीं रह सकती -

लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात
कण्टक चुभे, जागरण बने अवदात ।[2]

आखिर राम ने भी शक्ति की आराधना की और संग्राम में विजयी हुए यद्यपि उनका मन शंका, भय, हीनताबोध जैसे कई प्रकार की हीन-भावनाओं से जकड़ा हुआ था । अतः निराला की वैयक्तिकता के अनेक आयामों और दिशाओं का चित्रण उन्होंने खुद दिया है । बुढ़ापे के आगमन से जो शारीरिक बदलाव होता है, उसके चित्रण के साथ अपने एकाकीपन की भी सही तस्वीर उन्होंने कविता में खींची है -

मैं अकेला -
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सांध्यवेला
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला[4]

अपने मिटने की हालत तथा एकाकीपन को स्वीकारते हुए भी कवि में अदम्य ऊर्जा है, आस्था और आशा गुंफित है -

---

1. निराला -"राम की शक्तिपूजा" अपरा - पृ.45
2. निराला -"प्रात तव द्वार" अपरा - पृ.33
3. निराला - "राम की शक्तिपूजा" अनामिका - पृ.
4. निराला - "मैं अकेला" अपरा - पृ.55-56

अभी न होगा मेरा अन्त
अभी अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसन्त
हरे हरे ये पात
डालियाँ कलियाँ, कोमलगात ।[1]

निराला का संपूर्ण जीवन संघर्षमय रहा था । इसलिए ही उ कविताओं में विद्रोही व्यक्तित्व उभर आया है । यह व्यक्तित्व वैयक्तिक कवि में ही नहीं क्रान्ति-कविताओं में भी अभिव्यक्त है । "राम की शक्तिपूजा" जैसी उदात्त कविताओं में भी राम के माध्यम से अपनी आत्मनिष्ठता का परिचय उन्ह दिया है । जीवन संग्राम में निडर और अटल होकर संघर्ष करनेवाले निराला की वैयक्तिक अनुभूतियाँ पाठक को भी अधीर बनाने में समर्थ हुई हैं ।

पंत :-

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतिय का हूबहू चित्रण किया है । इसलिए उनकी कविताएँ हृदय को गहराई से छू लेती "आँसू" शीर्षक कविता में कविता के सृजन में कवि व्यक्तित्व की कितनी अहमियत उसकी ओर इशारा किया है -

वियोगी होगा पहला कवि
आह से भरा होगा गान
उमडकर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान ।[2]

---

1. निराला -"प्रात तव द्वार" अपरा - पृ. 33
2. पंत -"आँसू" रामसजन ारा उद्धृत, साहित्य के विविध वाद - पृ. 37

स्वच्छन्द कवि होने के कारण पंतजी में वैयक्तिकता की भावना बहुत अधिक तीव्र है । उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों का काव्य है ग्रन्थि । निराश प्रेमी का चित्रण जो प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से किया गया है । उसमें भी आत्मनिष्ठता का पुट विद्यमान है -

शैवालिन ! आओ मिलो तुम सिन्धु से
अनिल ! आलिंगन करो, तुम गगन का
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर
पर हृदय सब भाँति तू कंगाल है
चल किसी निर्जन विपिन में बैठ रह ।[1]

सचमुच पंतजी को अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा था । कठिन वेदना भी झेलनी पड़ी थी । इसलिए वेदना का संबोधन करके कवि कहते हैं -

वेदना कैसा उद्गार है वेदना ही है अखिल ब्रह्मांड यह
तुहिन में तृण में उपल में, लहर में, तारकों में, व्योम में है वेदना[2]

कवि ने यहाँ वेदना को विराटत्व की हैसियत दी है और उसे अलौकिक स्तर पर उठाने की बात भी की है । कवि के अनुसार "विश्वकवि ही है वेदना । विश्व का काव्य अश्रुकण भी ।[3] कभी कभी कवि का अस्तित्व हताश हो जाता है -

कहाँ है प्रेम ? कहाँ विश्वास ? आत्मबलिदान ? किसे है आस ?[4]

फिर भी "आधुनिक कवि की भूमिका" में उन्होंने वैयक्तिकता से परे जाने की बात की है जैसे - यह सच है कि व्यक्तिगत सुखदुख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैं ने अपनी रचनाओं में वाणी नहीं दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है ।

---

1. पंत - वीणा "ग्रन्थि" - पृ. 125
2. पंत - ग्रन्थि (ग्रन्थि खंड) - पृ. 128
3. पंत - पल्लव - पृ. 71
4. पंत - ग्रन्थि (वीणा खंड) - पृ. 76

में ने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है ।[1] फिर भी अपनी कविता में उन्होंने अपने भीगे हुए मानस तक का चित्रण किया है -

मेरा पावस ऋतु जीवन
मानस-सा उमडा अपार मन
गहरे धुंधले, धुले साँवले
मेघों से मेरे भरे नयन ।[2]

निराश कवि ने अपनत्व की प्राप्ति को जीवनदर्शन का रूप देने का प्रयास किया है । "एक तारा" से अकेलेपन से व्यथित कवि प्रश्न करते हैं -"क्या खोज रहा वह अपनापन ?" फिर उत्तर भी वह देता है -

दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन
लगता यह निखिल विश्व निर्जन ।[3]

कवि अपनी पराजय और निराशा छिपाने की कोशिश में निर्वेद भाव से यों कह उठते हैं -

यह जग का सुख जग को दे दो,
अपने को क्या सुख, क्या दुख ?[4]

पंतजी की प्रारंभिक कविताओं में वैयक्तिकता का स्वर ज़्यादा मुखरित है और परवर्ती कविताओं में कवि के दार्शनिक दृष्टिकोण से हम परिचित हो जाते हैं । लेकिन इस बात को स्पष्ट मान सकते हैं कि वैयक्तिक अनुभूतियों से ओतप्रोत उनकी कवितायें अत्यन्त गहरी है और पाठक उन अनुभूतियों में खो जाता है । अतः पंतजी की कविताओं का मूल स्वर व्यक्तिवादी ही है ।

---

1. पंत - आधुनिक कवि की भूमिका - पृ. 8
2. पंत - आँसू - पृ. 8
3. पंत - गुंजन - पृ. 85
4. पंत - वीणा/ग्रन्थि (वीणा खंड) - पृ. 8

महादेवी वर्मा :-

महादेवी वर्मा की कविता वैयक्तिक अनुभूतियों से भरी हुई है । वेदना की कवयित्री महादेवी ने अपने प्रियतम को संबोधित करती हुई जो कवितायें लिखीं उनमें वैयक्तिक प्रेम और रहस्यात्मकता का भाव स्पष्ट हो गया है । उनके गीतिकाव्य अनुभूतिप्रधान और आत्मपरक हैं । अपनी वैयक्तिक सुख-दुखात्मक अनुभूतियों से कवयित्री के गीतिकाव्य भरे हुए हैं । उनकी प्रायः सारी कविताओं में विरह पीडा और वेदना की ध्वनि प्रस्फुटित होने के कारण व्यक्तिवादी चेतना की प्रवृत्तियाँ ही अधिकतर हुई हैं ।

महादेवी का प्रियतम काल्पनिक है और उस प्रियतम के पास जाने की प्रबल इच्छा से वे कहती हैं -

मोम सा तन घुल चुका अब दीप-सा मन जल चुका है ।
विरह के रंगीन क्षण ले,
अश्रु के कुछ शेष कण ले,
बरुनियों में उलझ बिखरे स्वप्न के
सूखे सुमन ले,
खोजने फिर शिथिल पग ;
निश्वास दूत निकल चुका है ।[1]

इन पंक्तियों की गहराई पाठक को स्पर्श करने में अवश्य सक्षम हो है ।

प्रियतम के प्रति अपने असीम प्यार दर्शाने के लिए कवयित्री ने उन्हें अपने हृदय में आत्मसात् करने का प्रयास किया है । "नीरजा" की कवयित्री ने यों लिखा है -

---

1. महादेवी वर्मा - सान्ध्यगीत - पृ. 107

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या

x x x x x

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय ।
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या ।[1]

कवयित्री ने अपना पूरा जीवन अपने प्रियतम के लिए अर्पित किया है । अपने प्रियतम के सम्मुख वे अपनापन को मिटाने के लिए तैयार हो जाती है -

आज कहाँ मेरा अपनापन
तेरे छिपने का अवगुंठन,
मेरा बन्धन तेरा साधन,
तुम मुझमें अपना सुख देखो,
मैं तुममें अपना दुख प्रियतम ।
टूट गया वह दर्पण निर्मम ।[2]

महादेवी ने अपने अंदर की पीडा का सही चित्रण इन पंक्तियों में स्पष्ट किया है -

मैं नीर भरी दुख की बदली,
स्पन्दन में चिर निस्पन्द बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हंसा,
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरिणी मचली ।[3]

उनके जीवन में एक प्रकार का अभाव उन्हें हमेशा कचोटता रहा । उसका प्रभाव उनकी अपनी प्रवृत्तियों में पडा है । उनके शब्दों में कहे तो, "इस समय से मेरी

---

1. सं. गंगाप्रसाद पाण्डे - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी - पृ. 67
2. वही -पृ. 73
3. महादेवी वर्मा - सन्धिनी - पृ. 108

प्रवृत्ति एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुई, जिसमें व्यष्टिगत दुख समष्टिगत गंभीर वेदना का रूप ग्रहण करने लगा । और प्रत्यक्ष का स्थूल रूप एक सूक्ष्म चेतना का आधार देने लगा । कहना नहीं होगा कि इस दिशा में मन को वही विश्रम मिला जो पक्षिशावक को कई बार गिर उठकर अपने पंखों को सम्भाल लेने पर मिलता है ।"[1]

अहं के तिरोभाव को कवयित्री सह नहीं सकती । वे उसे किसी भी कीमत पर बरकरार रखना चाहती हैं । वे प्रिय से मिलन की कामना तक नहीं करती क्योंकि मिलन में व्यक्तित्व का विस्तार हो जाता है -

मिलन का नाम मत लो
मैं विरह में चिर हूँ ।[2]

अपने को तुच्छ समझकर दूसरों के लिए मोती का हार सजानेवाली है कवयित्री । अन्य छायावादियों की तुलना में वे व्यतिरिक्त दिखाई पडती हैं । अपनी वेदना की पराकाष्ठा में भी वे निराश नहीं बल्कि अपनी वेदना को उसकी उदात्त स्थिति में परिवर्तित करने का प्रयास करती हैं । अपने अज्ञात प्रियतम के सामने कवयित्री ने अपनी विवशता की अभिव्यक्ति भी दी है -

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात ।
वेदना में जन्म करुणा में मिला आवास ;
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात ।
जीवन विरह का जलजात ।[3]

महादेवी वर्मा का मूल्यांकन करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है

---

1. सं. गंगाप्रसाद पाण्डे - आज के लोकप्रिय कवि महादेवी वर्मा -भूमिका - पृ. 135
2. महादेवी वर्मा - सन्धिनी - पृ. 74
3. गंगाप्रसाद पाण्डे - आज के लोकप्रिय कवि महादेवी वर्मा - पृ. 63.

कि महादेवी की अनुभूति केवल व्यक्तिपरक आध्यात्मिकता की अनुभूति नहीं है, उसमें लोककल्याण की भावना भी है ।[1] लेकिन महादेवी की अनुभूतियों की प्रामाणिकता के संबंध में पहले ही शुक्लजी ने सन्देह प्रकट किया है कि यह कहाँ तक वास्तविक अनुभूतियाँ है ।[2] इसके समाधान के रूप में नगेन्द्र ने ही उल्लेख किय है कि यदि रचनाकार को ही अनुभूति की वास्तविकता का प्रमाण माना जाय तो कोई सन्देह नहीं रह जाता ।[3] जो भी हो इन दिग्गज आलोचकों के मूल्यांकन में यह बात स्पष्ट जाहिर होती है कि महादेवी की कविता का ठोस आधार व्यक्तिवादी चेतना है ।

छायावादोत्तर काल :-

मनुष्य का सहज और स्वाभाविक भाव है प्रणय । वह मनुष्य का सबसे अधिक प्रेरक भाव भी है । मनुष्य आजीवन अपनी तृप्तियों अतृप्तियों का आनन्द और अवसाद ग्रहण कर लेता है । प्रत्येक क्षण में वह किसी न किसी भाव से जुड़ा रहता है । किन्तु इन सभी भावों में प्रणय भाव सब से उत्कृष्ट उत्ते और उदात्त है । वह स्त्री पुरुष की कोमलतम और प्रखर अनुभूति है जो किसी न किसी स्तर पर किसी न किसी प्रहर में प्रत्येक जीवधारी को अपने रस से आप्लावि करती है ।[4] छायावादोत्तर काल में प्रणयभाव की प्रतिष्ठा पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है । उस कालखण्ड के कवियों ने प्रणय और मस्ती के गीत गाकर अपनी वैय अनुभूतियों का खुला चित्रण किया है । प्रणयानुभूति के साथ अपनी वेदना, निरा कुण्ठा आदि मानसिक वृत्तियों की भी अभिव्यक्ति छायावादोत्तर काल के कवि

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 562
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 720
3. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 720
4. डॉ. लक्ष्मीनारायण - कविता कालयात्रिक - पृ. 32.

ने की है । इन कवियों में सबसे प्रमुख हैं हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और रामेश्वर शुक्ल अंचल । छायावादी कवियों की अपेक्षा इन कवियों की खूबी यह है कि शरीर और मन को भी इन्होंने प्रतिष्ठा दी है । डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि "छायावादी काव्यचेतना शरीर से ऊपर उठकर मन और आत्मा का स्पर्श करती है जबकि इन कवियों में व्यक्तिनिष्ठ चेतना प्रधान रूप से शरीर और मन के धरातल पर व्यक्त होती रही है ।[1]

छायावादी कविता की उदात्तता और नयी कविता की यौन भावना के बीच की कड़ी के रूप में छायावादोत्तर काल का मूल्यांकन होता है । इस काव्यपद्धति को स्वच्छन्दतापरक काव्यपद्धति का सहज विकास भी कहा जा सकता है ।[2] आगे छायावादोत्तर कालीन कवियों के सब से प्रमुख कवियों पर हम विचार विमर्श करेंगे ।

हरिवंशराय बच्चन :-

बच्चन मस्ती के गायक हैं । जैसे सूचित किया गया उनका रचनाकाल, छायावाद और प्रगतिवाद के मध्य में पड़ता है । उनकी चेतना व्यक्तिवादी है । इसलिए उनकी रचनाओं में अपनी आत्मनिष्ठ और आत्मगत अनुभूतियों की झाँकियाँ मिलती हैं । अपनी प्रेम संबंधी रचनाओं में स्वच्छन्द एवं बाधारहित चित्रण करना कवि की विशेषता है । "एकान्त संगीत" में बच्चन ऐसे प्रेम के उपासक बने हुए हैं -

जब करूँ मैं प्यार, हो न मुझ पर कुछ नियंत्रण
कुछ न सीमा कुछ न बन्धन, तब रूकूँ जब

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 565
2. डॉ. लक्ष्मीनारायण - कविता कालयात्रिक - पृ. 33

प्राण प्राणों से करे अभिसार ।[1]

कवि की व्यक्तिपरक रचनाओं में "निशानिमन्त्रण", "एकान्त संगीत" और "आकुल अंतर" उल्लेखनीय हैं । किन्तु उनकी आरंभकालीन कविताओं में प्रणय भाव ही प्रमुख तत्व के रूप में उभर आया है । मधुबाला, मधुशाला मिलनयामिनी जैसी रचनाओं में प्रणयसंबंधी किशोर सुलभ सूक्ष्म अनुभूतियों को मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है । नारी के प्रति उनका आकर्षण इतना प्रखर है कि उसके सम्मुख परलो और आध्यात्मिक चेतना को भी ठुकराने के लिए वे तैयार हो जाते हैं । मधुबाला में कवि का प्रणय भाव ऐसा है -

इस पार प्रिये तुम हो, मधु है
उस पार न जाने क्या होगा ?[2]

बच्चन हालावादी कवि है ।[3] "मधुशाला" में हाला और प्याला कवि को ऐसी मस्ती में डुबो देती हैं कि वे दीवाने हो जाते हैं और पाठक भी अधीर हो जाता है

"होठ नहीं, सब देह दहे, पर
पीने को दो बूँद मिले" -
ऐसे मधु के दीवानों को
आज बुलाती मधुशाला ।[4]

"मिलन यामिनी" में बच्चन ने प्रेम की मांग की है और अपने बुझे हुए दीपक जलाने का निवेदन भी किया है -

मैं तमोमय, ज्योति की, पर, प्यास मुझको,
है प्रणय की शक्ति पर विश्वास मुझको,
स्नेह की दो बूँद भी तो तुम गिराओ,
आज फिर से तुम बुझा दीपक जलाओ ।[5]

---

1. बच्चन - एकांत संगीत - पृ. 57
2. बच्चन - मधुबाला - पृ. 102
3. विश्वंभर "मानव" - आधुनिक कवि - पृ. 336
4. बच्चन - मधुशाला - पृ. 37
5. बच्चन - मिलन यामिनी - पृ. 6.

प्रणयभाव का सशक्त रूप "मिलन यामिनी" में अंकित करके बच्चन ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है -

शिथिल पड़ी है नभ की बाहों
में रजनी की काया,
चाँद चाँदनी की मदिरा में
है डूबा, भरमाया,
अलि अब तक भूले-भूले-से
रस-भीनी गलियों में,
प्रिय, मौन खड़े जलजात अभी मत जाओ,
प्रिय, शेष बहुत हैं रात अभी मत जाओ ।[1]

प्रणय के अमूल्य क्षणों का एक दूसरा दृश्य "आकुल अंतर" में कवि ने प्रस्तुत किया है -

चाँद सितारो, मिलकर गाओ ।
आज अधर से अधर मिले हैं,
आज बाँह से बाँह मिली,
आज हृदय से हृदय मिले हैं,
मन से मन की चाह मिली
चाँद सितारो, मिलकर गाओ ।[2]

"निशानिमन्त्रण" में भोगभाव और क्षणवाद की झाँकियाँ मिल रही हैं । जो क्षण कवि को आनंद प्रदान करता है वही उनके सम्मुख मूल्यवान है । उस पर बच्चन ने यों लिखा है -

---

1. बच्चन - मिलन यामिनी - पृ. 160
2. बच्चन - आकुल अंतर - पृ. 47

फिर न पड़े जगती में गाना,
फिर न पड़े जगती से जाना,
एक बार तेरी गोदी में सोकर फिर मैं जाग न पाऊँ ।
ओ, तेरे उर में छिप जाऊँ ।[1]

बच्चन ने प्रेम की मधुर अनुभूतियों पर अपने कोमल हृदय का उद्‌गार निम्नलिखित पंक्तियों में अभिव्यक्त किया है -

नयन भरे हुए नवल श्रृंगार से,
श्रवण भरे हुए प्रणय पुकार से,
हृदय भरे हुए मधुर विचार से,
भरी हुई
ज़मीन
मुसकरा उठी ।[2]

प्रणयानुभूति एवं हाला से कवि का हृदय भर जाता है तो उन्माद या नशे में वे झूमते रहते हैं । ईश्वर के प्रति विद्रोह के स्वर "मधुशाला" के अंदर सुनाई पड़ते हैं -

धर्म ग्रन्थ सब जला चुकी है
जिसके अन्तर की ज्वाला,
मन्दिर, मस्जिद गिरजे-सबको
तोड़ चुका जो मतवाला ।[3]

कवि की विद्रोही भावना "एकान्त संगीत" में ज्यादा बलवती हो गयी है -

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर ।
युद्धक्षेत्र में दिखला भुजबल
रहकर अविजित अविचल प्रतिपल,
मनुज पराजय के स्मारक हैं, मठ मस्जिद, गिरजाघर ।

---

1. बच्चन - निशानिमन्त्रण - पृ. 46
2. बच्चन - मिलन यामिनी - पृ. 206
3. बच्चन - मधुशाला - पृ. 37

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर ।[1]

व्यक्तिवादी कवियों की दृष्टि में मनुष्य कभी कभी अकेला हो जाता है । जीवन संघर्ष में बच्चन को जो अकेलापन महसूस हुआ उसको इन पंक्तियों में सूचित किया गया है -

कितना अकेला आज मैं ।
संघर्ष में टूटा हुआ,
दुर्भाग्य से लूटा हुआ है,
परिवार से छूटा हुआ, कितना अकेला आज मैं ।
कितना अकेला आज मैं ।[2]

कवि मानते हैं कि उनका विश्वास आज छूट रहा है । लौकिक जीवन के सुख और विलासिता में उनका मन डूब गया था । वे अपनी वैयक्तिक जीवन में धार्मिकता का दावा नहीं करते बल्कि अपने मन की बात व्यक्त करते हैं -

महानाश में महासृजन है,
महामरण में ही जीवन है
था विश्वास कभी मेरा भी, किन्तु आज तो छूट रहा है ।
अब खँडहर भी टूट रहा है ।[3]

प्रकृति की ओर दृष्टिपात करके कवि अपने अकेलापन को तीव्र व्यथा को यों अंकित करते हैं -

भूपर वन, वारिधि पर ढोडे नभ में उड-खग मेला
नर-नारी से भर जगत में कवि का हृदय अकेला ।[4]

---

1. बच्चन - एकांत संगीत - पृ. 92
2. वही - पृ. 100
3. वही - पृ. 117
4. वही - पृ. 112

व्यक्तिवादी कवि प्रायः अपने मन की निराशा एवं कुण्ठा को भी प्रस्तुत करने से कभी हिचकते नहीं । वैयक्तिक पीडा और दुख से निराशा उत्पन्न हो जाती है । अपनी निराशा का समाधान ढूँढते हुए कवि आत्महत्या के निकट पहुँचकर कह उठते हैं -

अपने पर मैं ही रोता हूँ, मैं अपनी चिता संजोता हूँ
जल जाऊँगा अपने कर से रख अपने ऊपर सागर ।
खिडकी से झांक रहे तारे ।[1]

कतिपय व्यक्तिवादी कवि अनास्थावादी भी है । जीवन की असफलता, निराशा, पराजयबोध एवं पलायन की मनोवृत्ति से अक्सर व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है । बच्चन ने "एकान्त संगीत" में अपनी अन्तर्मुखता को स्पष्ट किया है -

डूब रही है नौका मेरी,
बंद जगत् हैं आँखें तेरी,
मेरी संकट की घड़ियों के साखी नभ के तारे ।
अब तो दुःख के दिवस हमारे ।[2]

बच्चन की व्यक्तिपरक कविताओं से गुज़रने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उनकी कविताओं में व्यष्टिमन की अनुभूतियों की सही अभिव्यक्ति हुई है । अपनी विलासिता की अधिकता के कारण वे हालावादी कवि कहे जाते हैं । किन्तु उनकी परवर्ती रचनाओं में पूँजीवादी व्यवस्था से असन्तुष्ट मध्यवर्गीय युवकों की मानसिकता का परिचय भी मिल रहा है । प्रणय के गीतकार कवि बच्चन भी अन्त में रहस्यानुभूति के मार्ग पर चलने लगे । इस पर डॉ.लक्ष्मीनारायण का मत है कि, "एक कवि और चिन्तक का भरा पूरा जीवन जीने के पश्चात् "वैयक्तिक रोगरंग के चितेरे बच्चन" ने इस महादेश की परंपराओं के अनुरूप रहस्यानुभूति के क्षेत्र में भी प्रवेश किया किन्तु उनका मूल स्वर प्रणयानुभूति के मादक स्वरों में ही झंकृत हो सका ।[3] दर असल

---

1. बच्चन - एकान्त संगीत - पृ. 33
2. वही - पृ. 17
3. डॉ.लक्ष्मीनारायण - कविता काल यात्रिक - पृ. 35

हिन्दी कविता के इतिहास में प्रणयानुभूति के क्षेत्र में बच्चन ने एक युग का सूत्रपात किया जो उनमें अंतर्निहित व्यक्तिचेतना का ही प्रस्फुटन था ।

नरेन्द्र शर्मा :-

नरेन्द्र शर्मा व्यक्तिपरक एवं प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रवर्तक हैं । इनकी कविताओं में छायावाद का प्रभाव है साथ ही मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव भी पड़ा है । इसलिए उनकी रचनाओं में व्यक्तिवादी चेतना एवं सामाजिक बोध का प्रसार देखने को मिलता है । बच्चन ने जिस प्रणयानुभूति का सूत्रपात हालावाद के रूप में किया था उसका विकास नरेन्द्र शर्मा की कविता में देखा जा सकता है । एक ओर उनको पंतजी का स्नेहपूर्ण संरक्षण मिला तो दूसरी ओर बच्चन का सुखद साहचर्य भी इनको मिला था । किन्तु उनका मुख्य प्रेरणा स्रोत पंतजी है । इसलिए उन्होंने अपने काव्यगुरू पंतजी के काव्यसूत्रों का विकास किया और अपनी कविताओं को ज़्यादा कलात्मक बनाया । इनके काव्यसौष्ठव की गहराई के कारण सामान्य पाठक भी इसे पढ़ने में असमर्थ हो जाते हैं ।[1] फिर भी बच्चन और पंत जी की व्यक्तिवादी चेतना का असर उनकी कविताओं पर पड़ा है ।

छायावादी कवि श्री प्रसाद, पंत और निराला के चरमोत्कर्ष काल में नरेन्द्र शर्मा किशोर कवि के रूप में विख्यात होते थे । उस समय मैथिलीशरण द्वारा रचित "भारत-भारती" सामाजिक स्तर पर ख्याति प्राप्त कर रही थी । दूसरी प्रमुख रचना नरेन्द्र द्वारा रचित "प्रवासी के गीत" थी जो रसिक जनों का

---

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण - कविता काल यात्रिक - पृ. 36.

कण्ठहार बन गयी थी ।[1] इसमें प्रणय भावना से उत्पन्न निराशा का चित्रण हुआ है जिससे कवि प्रवासी हो गया है -

सांझ होते हो न जाने छा गई कैसी उदासी ।
क्या किसी की याद आई औ विरह व्याकुल प्रवासी ।[2]

"प्रभातफेरी" भी काल्पनिकता और रोमांस की कविता है । किन्तु प्रणय के उच्छ्वास में लडखडाने की प्रवृत्ति नरेन्द्र शर्मा में नहीं है क्योंकि भारत के राजनीतिक जीवन में उन्होंने भाग लिया था ।[3] निराशा एवं असफलता के बीच कवि का मन संघर्षरत हो जाता है और काव्य में अपनी दयनीय दशा को चित्रित करने में वे सफल हो जाते हैं । प्रवासी के गीत में कवि की यह निराशा प्रकट हुई है -

है किसका विश्वास मुझे अब,
अपनी भी परतीत नहीं जब ?
हुआ सब तरह आत्म - पराभव ।[4]

प्रणयजन्य निराशा की अभिव्यक्ति भी कवि ने अंकित की है -

यदि इधर आना हुआ तो देख लोगी ।
स्नेह इसका बुझ चुकेगा और दीपक बुझ चुकेगा ।
हमें क्या जलते रहेंगे, जब ललक कुछ भी रहेगा ;
और खुद बुझ जाएंगे हम, जब अपना बस चलेगा ।[5]

डॉ. बलभद्र तिवारी के अनुसार वैयक्तिक भूमि पर आधारित होने के कारण उनका काव्य ऐन्द्रिक प्रतिक्रियाओं से भरपूर और व्यक्तिवादी है और वह बचपन से

---

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण - कविता काल यात्रिक - पृ. 36
2. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ. 13
3. डॉ. दयानन्द शर्मा - आधुनिक कवि और उनका काव्य - पृ. 107
4. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ. 91
5. वही - पृ. 88

निराशा, विफलता, संघर्ष और प्रताडना में समानता रखता है ।[1] बच्चन हालावादी है किन्तु नरेन्द्रजी आध्यात्मिकता एवं दर्शन की भी राह खोजते हैं ।[2] आत्मनिष्ठ वृत्तियों का बार बार आकलन उनकी कविता में हुआ है । शारीरिक क्षुधि को उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट करते हुए लिखा है, जैसे -

बहुत दिनों तक दूर दूर रह लिए आओ अंक मिलन कर लें,
विरह व्यथा के दिन सुमिरन कर दृढ़तर आलिंगन भर लें ।[3]

कवि प्रेम के रास्ते में अनुचित बन्धनों को स्थापित करनेवाले संसार के प्रति उपेक्षा भरे स्वर में अपनी वैयक्तिकता को व्यक्त करते हैं -

हाय रे निष्ठुर उपेक्षा ! क्या मुझे अधिकार,
जो कहूँ मेरे लिए निष्ठुर बना संसार ।[4]

इसके साथ ही प्रवासी के गीत में निराशा एवं नियति से पीडित कवि की मृत्यु की आकांक्षा भी उजागरित हुई है -

आज शान्ति से मरने का भी मेरा अधिकार छिन गया ?
मेरी अनुमति लिये बिना विधि, किस विधि मेरी श्वास गिन गया ?[5]

नरेन्द्र शर्मा मूलत: भावना और कल्पना के कवि हैं । मांसलता और ऐन्द्रियता के प्रति तीव्र आग्रह प्रकट करने की वजह से वे यथार्थवादी भी हैं । अत:

---

1. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 282.
2. डा. दयानन्द शर्मा - आधुनिक कवि और उनका काव्य - पृ. 110
3. नरेन्द्र शर्मा - "मिलन" प्रभातफेरी - पृ. 71
4. नरेन्द्र शर्मा - "पाँवों की हडकल" प्रवासी के गीत - पृ. 64
5. नरेन्द्र शर्मा - प्रवासी के गीत - पृ. 75

स्पष्ट है कि उनकी कविता आत्मनिष्ठ है और उसमें आत्म-केन्द्रित अनुभूतियों की ही ज्यादातर अभिव्यक्ति हुई है ।

रामेश्वर शुक्ल अंचल :-

रामेश्वर शुक्ल अंचल मांसल श्रृंगार के कवि हैं । उनकी कविताएँ छायावादोत्तर व्यक्तिपरक काव्यधारा की सभी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं । व्यक्तिगत जीवन में घटित होनेवाले यथार्थ को उन्होंने बारीकी से अंकित किया है । अंचल बच्चन से भी अधिक यौवन और प्रणय के उन्माद को अपना सर्वस्व माननेवाले रहे हैं । उनकी सारी उत्कृष्टता और दुर्बलता यौवन प्रेम और सौंदर्य में निहित हैं । साथ ही वे विद्रोहशील कवि के रूप में भी अपना परिचय देते हैं । पं. रमावतार तिवारी का मत इस संदर्भ में स्मरणीय हैं -"अंचल धर्म रूढि एवं ईश्वर के प्रति विद्रोहशील होकर, अतृप्त प्रेम-पिपासा की अभिव्यक्ति कर रहे थे ।"[1]

अंचल की कविताओं में यौवन का उद्दाम और प्रबल वेग, प्रेम और सौंदर्य की उत्सुकता का आभास मिलता है । छायावादी काव्य की रहस्यात्मकता और आध्यात्मिकता ने अंचल को उल्टी दिशा में चलने की प्रेरणा दी । इस पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ठीक ही कहते हैं -"इन्द्रियसंवेदना की इतनी अतिशयता और स्पष्ट स्वीकृति ही उन्हें छायावादी काव्य के परिपार्श्व में क्रान्तिदूत बना सकी हैं ।"[2]

अंचल की "अपराजिता", "किरणबेला", "लालचूनर" जैसी कविताओं में

---

1. रमावतार तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ. 20
2. नन्ददुलारे वाजपेयी - हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - पृ. 196

व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ प्रबल बन गयी हैं । "अपराजिता" में यौवन की उद्दामता और तृष्णा की अधीरता व्यंजित हुई है । साथ ही अपनी अनुभूतिगत सीमा की व्यापकता पर भी बल दिया गया है । निम्न पंक्तियों में इसका प्रकाशन भी हुआ है -

पूरब दिस से घिरी बंदरिया फिर बरसेगी पीर घनेरी
अलख, अकूल अतल से निकलेगी बरसाती तृष्णा मेरी
फिर उमंग से उमंग उठे ये बागीसाजन बड़े सलोने
यह मेघों का रैन बसेरा आज न देगा जी भर रोने ।[1]

इसी तरह "मधुलिका" में कवि ने यौवन का उद्दाम और संयोग वियोग की अनुभूतियों का यथार्थ चित्रण करने में सफलता पायी है । इससे अपने कवि हृदय की विद्रोही प्रवृत्तियाँ भी साकार हो उठती हैं । अपनी वासना की आग प्रज्ज्वलित करने के लिए उनकी आरंभिक कृतियाँ सहायक हुई हैं ।[2]

अंचल ने अपने मन की सशक्त विकृतियों का चित्रण स्पष्ट रूप से अंकित किया है । "अपराजिता" में कवि ने यौवन का यथार्थ चित्रण अंकित किया है -

इस प्रेरित लोलित रतिगति में जब झूल झमकता बेसुध गात,
गोरी बाँहों में कस प्रिय को कर दूँ चुम्बन से सुरा-स्नात ।[3]

उनका दर्शन मात्र यौवन का संपूर्ण भोग है । इसलिए वे अपने अमूल्य क्षण के प्रति जागरूक रहते हैं । "अंचल" पर वाजपेयी का कथन बिलकुल उचित ही है -"अंचल विनष्ट सौंदर्य की विषण्ण स्मृतियों का गायक है, उसमें जागृत और प्रदीप्त अतृप्ति का विह्वल रोदन है, उपर्युक्त विवेचन की पृष्ठभूमि में पूर्णतः उचित और सत्य है ।[4]

---

1. अंचल - अपराजिता - पृ. 16
2. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 285
3. अंचल - अपराजिता - पृ. 53
4. नन्ददुलारे वाजपेयी - हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - पृ. 208.

"किरणबेला" में प्रगतिवाद का बाना ओढ़ने का प्रयास है किन्तु बीच बीच में कवि की मूल अभिव्यक्ति प्रवृत्तियाँ उजागरित हो जाती हैं। इसलिए उनकी प्रगतिवादिता नष्ट हो जाती है और रूप और सौंदर्य के प्रति आसक्ति तीव्रतर हो जाती है -

युग-युग से कवि ने यौवन में बस एक यही गायन गाया,
अन्धड सी अंगों की गति में कब सुख भरा बुझाते आया।[1]

अंचल की सबसे बडी दुर्बलता नारी है। उसके मातृत्व को उसकी पूर्णता मानने के बजाय उसे भोग्या के रूप में कवि ने चित्रित किया है। उसे प्रणय की खिलाडिन तक कहने के लिए वे उद्विग्न हैं -

किन्तु नारी सिर्फ नारी हो तुम्हें मैं जानता हूँ
तुम प्रणय की हो खिलाडिन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।[2]

प्रगतिशील होने का प्रयास अंचल के "करील" नामक काव्य में हुआ है। लेकिन कवि के व्यक्तित्व की विकृतियाँ इसमें दर्शनीय हैं -

रात को बनी थी तुम गीली और रंगीली,
किन्तु दिन में बनी अखण्ड युद्ध की करालिका।[3]

अंचल ने अपनी अन्तिम कविताओं में जनजीवन की ओर मुड़ने का प्रयास किया है। लेकिन उसमें वे असमर्थ भी हो जाते हैं। इसपर कवि ने स्वयं लिखा है - विलासों और चुम्बन के दाग जिन साँसों में भर पडे हैं उनसे क्रान्ति की आशा करना व्यर्थ है फिर भी "जन जन के मन में", नूतन अभियान और "अलविदा" में कवि की निराशा अतृप्ति और मांसलता ही व्यक्त हुई है।"[4]

---

1. अंचल - किरणबेला - पृ. 119
2. अंचल - "नारी" प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी - पृ. 68
3. अंचल - करील - पृ. 19
4. अंचल - विराम चिह्न - पृ. 69

प्रेम जनित अपनी निराशा और क्षयी रोमांस के प्रति उनकी आसक्ति का चित्रण "अपराजिता" में मिलता है -

मैं ने सब जग सूना पाया,
मुझको न किसी ने अपनाया ।[1]

बच्चन, नरेन्द्र शर्मा और अंचल की कविताओं का मूल स्वर प्रणय होने के बावजूद भी ये तीनों व्यक्तिवादी कवि अत्यन्त संवेदनशील हैं । तीनों ने स्थूल मांसल सौंदर्य का खुला चित्रण प्रस्तुत किया है । बच्चन हालावादी है तो नरेन्द्र शर्मा रोमांटिक होने के साथ एक हद तक अध्यात्मवादी भी है । अंचल प्रणय की असफलता के कवि है । दरअसल वर्तमान के सुख भोगना इनका लक्ष्य है । व्यक्तिवाद कविता में व्यक्ति को केन्द्र में रखा जाता है । इन कवियों ने स्वयं को केन्द्र में रखा और अपनी आकांक्षा, निराशा, प्रेम सौंदर्य और अतृप्त वासनाओं का नग्न चित्रण करके अपनी ही वैयक्तिकता को प्रश्रय दिया । समाज से हटकर वैयक्तिकता पर केन्द्रित हो जाने के कारण उनकी कविता का दायरा सीमित हो गया था । अपने प्रणय को लेकर काल्पनिक दुनिया में ये विचरण करते रहे । संक्षेप में छायावाद के क्षतिग्रस्त होते होते और प्रगतिवाद के उदय के पहले हिन्दी कविता की चेतना घोर व्यक्तिनिष्ठ रही थी ।

---

1. अंचल - अपराजिता - पृ. 34.

तीसरा अध्याय

प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी चेतना

आधुनिक काल की विशेषकर बीसवीं सदी के उत्तरपूर्वार्द्ध की काव्यप्रवृत्तियों में वैयक्तिक अनुभूतियों की उन्मुक्त अभिव्यक्ति हुई है। विश्वयुद्धों की भयानक विभीषिकाओं से उद्भूत अस्तित्व सुरक्षा की समस्याओं से जूझते हुए तत्कालीन कवियों ने अपने अस्तित्वबोध को उजागरित करने का भरसक प्रयास किया था। इस प्रयास के संदर्भ में कई कवियों ने वैयक्तिकता को ग्रहण करके कविता के क्षेत्र में एक नया आयाम प्रस्तुत किया। किन्तु प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में वैयक्तिकता सबसे प्रखर हो गयी है। इस काव्यधारा में नवीनता के प्रति एक अप्रतिम मोह भी दृष्टिगोचर होता है। अन्य काव्यपद्धतियों की अपेक्षा अस्तित्वबोध के संघर्षों से जकड़े हुए मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कवियों की आत्मनिष्ठता और आत्मपरकता इस काव्यधारा में स्पष्ट हो गयी है। इस के प्रणयन में तत्कालीन परिवेश ने अहं भूमिका निभाई थी। अत: प्रयोगवादी कविता की बारीकियों के विश्लेषण के पहले परिवेश का संक्षिप्त आकलन अवश्यंभावी है।

भारतीय परिवेश :-

हिन्दी साहित्य में व्यक्तिवादी कविता का उदय आधुनिक युग में हुआ है । इस काव्य पद्धति के रूपायन तथा विविध दार्शनिक विचारधाराओं के प्रभाव ग्रहण के लिए तत्कालीन भारतीय परिवेश सक्षम रहा था । विश्वयुद्धों का प्रभाव व्यक्तिवादी काव्यान्दोलन पर अवश्य पड़ा था । भारत की स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों ने कवियों को आस्थाहीन बनाया था । द्वितीय विश्वयुद्ध की भयानक विभीषिकाओं ने मानव की गरिमा एवं व्यक्तित्व को विघटित कर दिया और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कवियों का व्यक्तिबोध जागरित हो उठा । व्यक्ति अपने अस्तित्व पर सन्देह करने लगा । डा. ओमप्रकाश अवस्थी ने सूचित किया है कि "विश्वयुद्ध की विभीषिका ने मानवजीवन के शाश्वत मूल्यों को तिरोहित किया और सर्वत्र कुंठा, निराशा और घुटन का स्वर व्यापक रूप से चला । इस महानाश की सूत्रधारिणी हुई मृत्यु । मनुष्य को इस भयावह स्थिति को देखकर व्यक्ति अपने में अकेला रह गया । इसलिए अपना बचाव और भाषा के लिए उसने वैयक्तिकता का आश्रय ग्रहण किया ।"[1] दरअसल जीवन के प्रति विश्वास का अभाव व्यक्तिवाद के आविर्भाव का कारण भी रहा था ।

युद्धोपरान्त वातावरण से कवियों को यह आशंका हुई कि कहीं उनका व्यक्तित्व बौना हो जाएगा । वैज्ञानिक विकास के कारण मनुष्य मशीनों का दास बन गया और इस गुलामी से मुक्त होने के लिए वह ललक उठा । जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया कि इस मानसिकता ने मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कवियों में व्यक्ति-बोध और अहं के भाव जागरित किए । इतना ही नहीं अकेलापन से ग्रसित व्यक्ति मानव के सामने अपनी सुरक्षा का सवाल भी आया । इस बात पर टिप्पणी

---

1. डॉ. ओमप्रकाश अवस्थी - नई कविता रचना प्रक्रिया - पृ. 56

करते हुए डॉ. अरुण कुमार ने लिखा कि "अस्तित्व सुरक्षा की प्रत्याशा में नये कवियों का व्यक्तिबोध और भी गहरा हो गया ।"[1] ऐसी हालत में इन कवियों ने अपनी वैयक्तिकता की अभिव्यक्ति के लिए कविता को माध्यम बनाया ।

सन् 1936 से लेकर भारत के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की लहर उठी । द्वितीय विश्वयुद्ध, सन् 1942 की महान क्रान्ति, आज़ाद हिन्द फौज और नौ सेना विद्रोह, पाकिस्तान की मांग, भारत विभाजन, भयंकर नरमेध तथा शरणार्थी समस्या आदि ने भारतीय जीवन को गहराई से प्रभावित किया और इनकी वजह नींवाधार परिवर्तन भी हुए । तृतीय विश्वयुद्ध की संभावना पंचशील तथा सह-अस्तित्व की भावना का उदय, गांधी हत्या, आज़ाद सत्ता की समस्याएँ, देश के नेताओं की स्वार्थलिप्सा आदि घटनाओं का भी सामाजिक जीवन पर गहरा असर पड़ा । आगे इन परिस्थितियों पर संक्षेप में विचार-विमर्श किए जाएँगे ।

राजनीतिक परिस्थितियाँ :-

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव प्रयोगवादी कविता पर अवश्य पड़ा है । इस कविता पद्धति की शुरूआत में स्वतन्त्रता आन्दोलन ज़ोरों से चल रहा था । इन दिनों में ही समाजवादी विचारधारा का विकास होने लगा था । इस युग में साहित्य और राजनीति की घनिष्ठता पर भी ज़ोर दिया गया था ।[2] समाज का एक हिस्सा गाँधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक पथ

---

1. डॉ. अरुणकुमार - नई कविता कथ्य और विमर्श - पृ. 242
2. डॉ. नामवर सिंह - कविता के नये प्रतिमान - पृ. 84

पर चल रहा था तो एक और हिस्सा सुभाषचन्द्रबोस के नेतृत्व में क्रान्तिकारी रास्ता का साथ दे रहा था ।

सन् 1939 से 43 तक अनेक प्रकार के संकटों का समय रहा था । "अहिंसा सशक्त क्रान्ति और आज़ाद हिन्दी फौज सब ने एक साथ अपने कन्धे लगा दिए थे ।"[1] एक ओर गाँधीजी अपने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर अटल रहे तो दूसरी ओर कांग्रेस के अनेक सदस्य गाँधीजी के सिद्धांतों के खिलाफ हो गए और कांग्रेस छोडकर चले गए । सन् 1938 के हरिपुरा तथा 1939 के त्रिपुरा कांग्रेस के अधिवेशनों में सुभाष चन्द्रबोस ने अध्यक्षता की और आज़ाद हिन्द फौज की तैयारी भी की । 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध के छिडने पर अंग्रेज़ों ने भारतीयों को भी इस युद्ध में सम्मिलित कर लिया और सन् 1940 में जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान की मांग की । सन् 1942 में समाज में जो दंगे और रक्तपात जारी रहे थे उनको रोकने के लिए यानी समझौता करके जनता को शांत करने के लिए स्ट्रेफर्ड क्रिप्स भारत आए किन्तु वे इस प्रयास में पराजित हुए । 1942 को महात्मा गांधी ने बंबई अधिवेशन में "भारत छोडो" के नारे का आह्वान किया । इसके बाद सन् 1943 में बंगाल में भीषण अकाल पडा और लाखों की मृत्यु भी हुई । यद्यपि 1945 में युद्ध समाप्त हुआ लेकिन भारत को स्वतंत्रता नहीं मिली । इसकी प्रतिक्रिया में नाविक विद्रोह भी हुआ । 1946 में संविधान सभा के चुनाव में कांग्रेस को सफलता मिली । क्रुद्ध होकर जिन्ना ने सीधी कार्यवा का निश्चय किया । फलस्वरूप कलकत्ता और नोआखाली के दंगे शुरू हुए । गाँधीजी ने कई स्थानों के दंगे शान्त करने के लिए अनथकी कोशिश की ।[2]

---

1. डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिन्दी नवलेखन - पृ. 35
2. डॉ. टी एन मुरली कृष्णम्मा - छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ - पृ. 15

सन् 1947 में भारत स्वतन्त्र हुआ और शासन की बागडोर नेहरू जी के हाथों में आ गई । परन्तु भारत विभाजन से प्रत्येक भारतवासी दुखी रहा था । शरणार्थी, कश्मीरी और रियासतों की समस्याओं को सरकार को ही सुलझाना पडा । 1948 में सांप्रदायिक शक्तियों की साजिश के फलस्वरूप गाँधीजी की निर्मम हत्या हुई । सरदार पटेल ने रियासतों की समस्या को कारगर ढंग से हल भी किया । कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण हुआ तो भारत ने डटकर मुकाबिला किया ।

सन् 1951 में पंचवर्षीय योजनाओं की शुरूआत हुई । 1952 में पहला आम चुनाव भी हुआ । खाद्यान्न के अभाव में अमेरिका की सहायता लेनी पडी । नेहरूजी ने भाषा के आधार पर देश को विभाजित किया जिसका विरोध भी हुआ था । सन् 1962 में पंचशील योजना के बावजूद भी भारत पाकिस्तान संघर्ष चला ।

राजनीतिक क्षेत्र की इन सभी घटनाओं का असर अप्रत्यक्ष रूप में प्रयोगवादी कविता पर पडा था । कतिपय संदर्भों में यह प्रभाव प्रत्यक्ष एवं तीखा भी रहा था ।

सामाजिक परिस्थितियाँ :-

आलोच्ययुगीन भारतीय समाज में पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और वैज्ञानिक प्रगति के कारण कई प्रकार के परिवर्तन हुए थे । बीसवीं सदी के प्रारंभ में ही

---

1. डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप - पृ. 69

उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग का उदय हुआ था । इन तीनों वर्गों में साम्राज्यवाद के खिलाफ मोर्चा लेने में यद्यपि आखिरी पड़ाव में उच्चवर्ग भी एक हद तक साथ दिया था किन्तु निम्नवर्ग के किसान मज़दूर तथा सामान्य व्यक्तियों ने ही स्वहित की अपेक्षा देशहित को प्रमुखता दी थी । उच्चवर्ग के ज़मीन्दारों और पूँजीपति अपनी स्वार्थभावना की नज़रिये से समाज और राष्ट्र को देख रहे थे । मध्यवर्ग ने पूर्ण रूप से राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लिया और अपने नेतृत्व और आत्मबलिदान का परिचय दिया । भारतीय समाज की जाति व्यवस्था का ढाँचा भी इस वर्गचेतना के आविर्भाव से तिरोहित होने लगा ।

देश विभाजन और शरणार्थी समस्या के कारण देश की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो चली । फलतः दैनिक उपभोक्ता सामग्रियों में कमी होने लगी । अन्न वस्त्र के अभाव एवं भीषण बेकारी बेरोज़गारी से निम्नवर्ग अत्यधिक पीड़ित हुआ । साहूकारों और कारिन्दों ने किसान की हालत को एकदम बरबाद कर दिया था । कर्ज चुकाने की असमर्थता की वजह से किसान के एक पुश्त का कर्ज कई पुश्तों तक बकाया रह जाता था । कंट्रोल तथा रेशनिंग वितरण से जनमानस में क्षोभ और निराशा छा गयी थी । असंतुष्ट लोगों ने हड़ताल प्रदर्शन और तोड़फोड़ के माध्यम से अपना विद्रोह प्रकट किया था । यद्यपि ज़मीन्दारी प्रथा के उन्मूलन के लिए ग्राम पंचायतों तथा सरकारी संस्थाओं एवं कृषियोजनाओं की स्थापना की गयी थी फिर भी कोई नींवाधार परिवर्तन नहीं हुआ । अतः स्वाधीनता की खुशी के बदले भारतीय युवकों के मन में निराशा,क्षोभ, अशांति विघटन और खीझ ने अपना अधिकार जमा लिया । वे इतने अन्तर्मुखी बन गये कि अनेक प्रकार की मानसिक व्याधियाँ उन्हें जकड़ने लगीं ।

औद्योगीकरण, पूँजीवाद, शहरीकरण और पाश्चात्य संस्कृति ने निम्न एवं मध्यवर्ग को बिलकुल असंतुलित और अस्थिर बना दिया । बड़े बड़े उद्योग शहरों में केन्द्रित हो गए और किसान गाँव छोड़कर शहरों की ओर भाग गए । अपने परिवारगत पेशे को छोड़ देने के कारण परिवार में भी विघटन होने लगा । संयुक्त परिवार केवल नाममात्र रह गया और वैयक्तिकता का ढाँचा इस समय रूपायित हो गया ।[1] श्रमिक वर्ग उद्योगपतियों के शोषण का शिकार हो गया तो किसान ऋण अदा करने से गुलाम बनता गया । मध्यवर्ग निम्नवर्ग से बेहत्तर जीवन जीने का स्वप्न देखता रहा । पर द्वितीय विश्वयुद्ध की भयानक घटनाओं ने मध्यवर्गीय जीवन को दूभर बना दिया । महंगाई और बेकारी की समस्यायें उनके सामने पहाड़ सी उपस्थित हुई थीं । उच्चस्तर की ज़िन्दगी के बदले मध्यवर्गीय जनमानस को कदम कदम पर असफलता ही हाथ लगी । अपनी आर्थिक असमर्थता के बावजूद भी मध्यवर्ग उच्चवर्ग के समान जीने की लालसा लेकर चलता रहा । पर अपनी असफलता ने उसे व्यक्तिवादी क्षणवादी एवं पलायनवादी बना दिया ।[2]

उच्चवर्ग में जमीन्दार और पूँजीपति मुख्य हैं । जमीन्दार पहले से भारतीय समाज में रहे लेकिन पूँजीपतियों का जन्म अंग्रेज़ों की देन हैं । किसानों पर जमीन्दारों का प्रभाव हावी रहा और पूँजीपति श्रमिकों का शोषण करते रहे साहूकार एवं महाजन के स्थान पर पूँजीपतियों की सत्ता कायम रही । बड़े बड़े पदों पर उच्चवर्ग की प्रतिष्ठा भी हुई तो वर्ग विषमता का होना स्वाभाविक ही था । दरअसल एक ओर गरीबों के खून चूसनेवाले पूँजीपति, और धनी हो रहे थे तो निम्न और मध्यवर्ग दिन ब दिन गिरते जा रहे थे । इस परिवेश में सांप्रदायिकता ने भी समाज को असंतुलित बनाने में साथ दिया । मुस्लिम लीग हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ आदि संगठनों का काम ज़ोरदार चल

---

1. केसरी नारायण शुक्ल - हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग 14 -
2. डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मान एवं स्वरूप - पृ. 79

अस्पृश्यता जाति व्यवस्था की रूढ़िवादी मनोवृत्ति की उपज है और गाँधीजी के हरिजन सेवक संघ की स्थापना द्वारा अछूतों का उद्धार करने का प्रयास किया गया । डॉ॰ अंबेडकर ने अस्पृश्यता को दण्डनीय अपराध घोषित किया और उनकी रक्षा की खातिर कानून भी निर्मित किये गये । आचार्य विनोबा भावे ने भी इस क्षेत्र में अपना योगदान दिया ।[1]

तत्कालीन समाज में नारी भी जाग्रत हुई । सदियों से शोषित नारी महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वावलंबन और गौरव के साथ सामाजिक जीवन की ओर उन्मुख होने लगी । धीरे धीरे नारी जाति का आत्मबल उद्दीप्त हुआ कि विधवा विवाह, बाल विवाह, वेश्यावृत्ति, अशिक्षा, परदा प्रथा, नारी समस्या, आदि प्रश्नों की मीमांसा करती हुई अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए कटिबद्ध हुई । जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों से स्पर्धा करती हुई उसे चमत्कृत करने का प्रयास करने लगी । यों सदियों से चहारदीवारी में कैद नारी अपने कर्तव्यों के प्रति सजग हो उठी । राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों में भाग लेने के लिए वह तैयार हो गयी । इतना ही नहीं चुनाव में जीतकर कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों में उसे महत्वपूर्ण पद भी हासिल हो गया ।

आर्थिक परिवेश :-

स्वतंत्रता के बाद शासन की बागडोर कांग्रेस के हाथों आ गई थी । लेकिन उस समय आर्थिक परिस्थितियाँ बिलकुल गिरी हुई थीं । नेताओं में मतभेद होने पर भी एकत्रित होकर सब से पहले आर्थिक समस्याओं को सुलझाने [सुधारने] का प्रयास किया गया । खाद्यपदार्थों की महंगाई दिन ब दिन बढ़ती गई और

---

1. डॉ॰ कौशलनाथ उपाध्याय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप - पृ॰ 82

कश्मीर युद्ध और शरणार्थियों की समस्या हल करने के लिए आर्थिक व्यय भी हुआ ।

भारत वर्ष को देश विभाजन की शर्त पर आज़ादी मिली थी । हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के देश का बंटवारा हुआ । भीषण सांप्रदायिक दंगे भी हुए । लाखों लोगों की निर्मम हत्या हो गयी और कई बेघरबार भी हुए । स्वतंत्रता के परिणाम स्वरूप जो आनन्द की उम्मीद थी उसमें पानी फेर गए और लोग दुखी एवं निराश भी हो गये । खाद्य पदार्थों की महंगाई बढ़ती गयी । ज़रूरी चीज़ों की बुरी तरह कमी होने लगी । अन्न संकट की समस्या भी सामने आयी । कपड़ा, तेल, चीनी, नमक, ईंधन, दुर्लभ हो गया । चोर बाज़ारी, मुनाफाखोरी आसमान को छूने लगी, भूख से कइयों की मृत्यु भी हो गयी । चीज़ों का दाम इतना अधिक बढ़ गया कि कोई भी विश्वास नहीं कर सकता था ।[1] अतः अनिश्चय और दिग्भ्रम के बिन्दु पर व्यक्ति पहुँच गया । आर्थिक क्षेत्र की ये घटनाएँ भी प्रयोगवादी कविता के रूपायन में अहं भूमिका निभाई थीं ।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव :-

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में जबरदस्त पड़ा था । यह सर्वविदित बात है कि उद्योग के क्षेत्र में क्रान्ति पहली बार इंग्लैंड में हुई थी । सन् 1760 ई. से यह क्रान्ति आरंभ हुई और 1776 ई. में अमेरिकी स्वातंत्र्य की घोषणा हुई । किन्तु इंग्लैंड के औद्योगिक विकास में समिधा भारतीय उपनिवेश से लायी जाने लगी । परिणामस्वरूप धीरे धीरे

---

1. जवाहरलाल नेहरू - हिन्दुस्तान की कहानी - पृ. 582.

भारतीय कुटीर उद्योगों का पतन होने लगा । सुबासकुमार का कथन इस संदर्भ में स्मरणीय है - "ज्यों ज्यों इंग्लैंड के उद्योग विकास करते गये, त्यों त्यों भारतीय घरेलू उद्योग सिकुड़ते गये ।"[1]

भारत से कच्चे माल की लूट निरन्तर होती जाती थी । किन्तु भारत के औद्योगिक विकास में अंग्रेज़ों को बिलकुल रुचि नहीं थी । यह सबको विदित है कि किसी भी राष्ट्र की तरक्की के लिए औद्योगिक विकास अनिवार्य है । श्री एम विश्वेश्वरैया ने लिखा है कि आधुनिक युग की प्रचण्ड आवश्यकता बः उद्योगों की है जो प्रमुख रूप से छोड़ दी गयी है ।[2]

भारत के औद्योगीकरण से अंग्रेज़ों का लक्ष्य यह था कि भारत से मुनाफ विदेश ले जाना । इसी वजह से भारत की हालत और बिगड़ने लगी । ईस्ट इंि कंपनी के एकाधिकार की समाप्ति पर ब्रिटिश पूँजीपतियों के हाथ भारत तक पहुँचे यों भारत में पूँजीवाद का भी विकास हुआ ।

पूँजीवादी व्यवस्था के प्रथम चरण में जो लाभ हुआ वह विदेश की अ बहने लगा । भारत के कृषक एवं मज़दूर लोग औद्योगीकरण के जाल में फँस गये । यानी यहाँ के गाँवों की स्थिति नरकतुल्य हो गयी । भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने औद्योगिक विकास पर बल दिया । पंचवर्षीय योजनाएँ भी लागू की गयीं । भारत को आर्थिक समृद्धि का सुअवसर प्राप्त हुआ किन्तु देशी

---

1. सुबासकुमार - आधुनिक हिन्दी काव्य - पृ. ।
2. प्लांड इकॉनमी फॉर इंडिया - 1936 डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक सा की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 153 पर उद्धृत ।

उद्योगपति भी अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए सरकारी तंत्र को प्रभावित करने लगे । आम जनता की विराट आकांक्षा के विरुद्ध बिड़ला जैसे उद्योगपति को बढ़ावा मिला व्यक्ति मशीन का दास हो गया । डॉ. रमेशकुन्तलमेघ के शब्दों में विश्व इतिहास में पहली बार मनुष्य मशीनों का दास हुआ । पहली बार रिनैसा का आरंभिक कृषक वर्ग व्यापारी वर्ग में रूपांतरित हो गया । पहली बार उच्च मानवतावाद की परिणति व्यक्तिवाद में हुई । फलस्वरूप पहली बार अकेले मनुष्य और अव्यवरि समाज के बीच "परायापन" की भीषण समस्या आ खड़ी हुई । पुराने आदर्श और प्रारूप अनुपयोगी तथा अप्रामाणिक हो गए ।[1]

इन परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर खासकर कविता संसार में पड़ा है । मनुष्य का जीवन यान्त्रिक और तनावपूर्ण होने लगा । कवियों ने देखा कि ज़िन्दगी की भागदौड़ में हृदय की कोमल वृत्तियाँ कुंठित होती जा रही है । अतः उन्होंने इस यांत्रिक जीवन की खुलकर अभिव्यक्ति दी ।

प्रयोगवाद

प्रयोगवादी काव्यधारा का उद्भव सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा संपादित तारसप्तक के प्रकाशन के साथ हुआ ।[2] यानी यह एक विशेष काव्यपद्धति रही जिसका नेतृत्व अज्ञेय कर रहे थे । द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर कालीन भारतीय समाज के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कवियों के संघर्ष, अस्तित्वबोध, व्यक्तिनिष्ठा, कुण्ठा, घुटन आदि से युक्त कविताएँ ही प्रयोगवादी कविता के नाम पर प्रकाशित हुई थीं

---

1. डॉ. रमेशकुंतल मेघ - आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण - पृ. 70.
2. डॉ. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 14

इस पर डॉ. रमाशंकर तिवारी का कथन है कि "समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति कवि [नए कवि] तीव्र असंतोष एवं गहन पराजय वृत्ति से आक्रान्त होकर, अपनी स्थिति को त्रिशंकु के समान समझने लग गए क्योंकि असामाजिक अनुपयोगिता के विरुद्ध उनका विद्रोह सफल न हो सका [क्योंकि वे सामाजिक परिवेश को बदल न सके] जिस कारण उनका संबंध अपने ही वर्ग [मध्यवर्ग] और जनसाधारण के निम्नवर्ग से भी कट गया - मध्यवर्ग से उन्हें उपेक्षा मिली और निम्नवर्ग से, झूठी प्रतिष्ठा के मोह के कारण वे तादात्म्य स्थापित नहीं कर सके।"[1] दरअसल प्रयोगवादी काव्यधारा की एक विशिष्ट पृष्ठभूमि है और उसका इतिहास भी द्रष्टव्य है जिसका विवेचन हो चुका है। यद्यपि अज्ञेय का व्यक्तित्व प्रयोगवादी कविता क्षेत्र में हावी रहा है फिर भी तीसरे सप्तक के बाद ही अज्ञेय की प्रतिष्ठा प्रयोगवादी काव्य के क्षेत्र में हुई थी।[2]

साहित्यिक क्षेत्र में "प्रयोगवाद शब्द का प्रयोग तारसप्तक के प्रकाशन के साथ होने लगा था। इसकी परिभाषा देते हुए डा. शंभूनाथ सिंह कहते हैं कि, "प्रयोगवाद उस काव्यपद्धति का नाम है जो छायावाद युग की समाप्ति के बाद प्रगतिवादी काव्य पद्धति के समानांतर या उसके साथ मिलकर नवीन और साहसपूर्ण काव्यप्रयोगों को अपनाकर अग्रसर हुई थी।[3] "प्रयोग" शब्द इसके पहले भी हिन्दी काव्यक्षेत्र में प्रयुक्त किया गया है बल्कि प्रयोगवाद नई प्रवृत्ति है। इसपर अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि "प्रयोग तो प्रत्येक युग में होते आये हैं किन्तु "प्रयोगवाद" नाम उन

---

1. डॉ. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ. 26
2. मुरारीलाल शर्मा - सुरस - पृ. 85
3. डॉ. शंभूनाथ सिंह - प्रयोगवाद और नई कविता - पृ. 12

कविताओं के लिए रूढ हो गया है जो कुछ नये बोधों, संवेदनाओं तथा उन्हें पोषित करनेवाले शिल्पगत चमत्कारों को लेकर शुरू शुरू में तारसप्तक के माध्यम से सन् 1943 में प्रकाशन जगत में आयीं और जो प्रगतिशील कविताओं के साथ विकसित होती गयीं तथा जिनका पर्यवसान नयी कविता में हो गया ।"[1]

जैसे सूचित किया गया है प्रयोगवाद शब्द नवीन होने पर भी प्रयोग भावना इस काव्यान्दोलन के पहले भी प्रचलित थी । निराला के "कुकुरमुत्ता", "नये पत्ते" आदि कविताओं में परंपरा के प्रति विद्रोह के स्वर बुलन्द है ।[2] प्रयोगवादी कवियों की चेतना का पूर्वाभास इन काव्यों में बीज रूप में संजोया गया है जो बाद में विकसित हो गया ।

"प्रयोगवाद" को किसी वाद के अन्तर्गत रखना प्रयोगवादियों का उद्देश्य नहीं था । दूसरे सप्तक में अज्ञेय ने लिखा है कि प्रयोगवाद का कोई वाद नहीं होता । "हम वादी नहीं रहे, नहीं है । न प्रयोग अपने आप में इष्ट या साध्य नहीं है । अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक और निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना ।"[3] तारसप्तक की भूमिका में एक संपादक की हैसियत से अज्ञेय ने प्रयोगवादी काव्यधारा पर अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है -"संगृहीत कवि सभी ऐसे होंगे हो कविता को प्रयोग का

---

1. डॉ. नगेन्द्र - हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ. 935
2. डॉ. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 38
3. अज्ञेय - दूसरा सप्तक - पृ. 6

विषय मानते हैं ।..... इससे यह परिणाम न निकाला जायें कि वे कविता के किसी एक स्कूल के कवि हैं या किसी साहित्य जगत के किसी गुट अथवा दल के सदस्य या समर्थक कवि हैं । बल्कि उनके तो एकत्र होने का कारण यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं । किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं - राही नहीं, राहों के अन्वेषी । उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग अलग है, जीवन के विषय में, कथावस्तु और शैली के, छन्द और तुक के कवि के दायित्वों के - प्रत्येक विषय में उनका आपसी मतभेद है ।"[1]

प्रयोग की अनिवार्यता पर विचार करने से यह सत्य उभर आता है कि कवि के सामने सबसे बड़ी समस्या प्रेषणीयता की है । अपनी अनुभूतियों को पाठकों तक संप्रेषित करने के लिए जो माध्यम है वह भाषा ही है । प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि में प्रचलित भाषा अपूर्ण ही है - "कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है - शब्दों के साधारण अर्थ से बड़ा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बड़े अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त है । वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है ।[2] ऐसी अवस्था में उन्हें नये नये प्रयोगों के अन्वेषण की ज़रूरत पड़ती है ।

"वाद" शब्द प्रयोग के साथ जुड़ा हुआ है । इसी से किसी संकीर्ण अर्थ का आभास होता है । दरअसल प्रयोगवादी कवि कहने से यही अर्थ निकल

---

1. तारसप्तक की भूमिका - पृ. 11-12
2. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ. 276

रहा है कि वही जो प्रयोग के प्रति सचेत है और सायास काव्य लिखता है । इसके पूर्व के कवियों ने प्रयोग किए किन्तु वे नये नये प्रयोगों के प्रति सचेत नहीं रहे क्योंकि उन्हें युग के परिवेश के द्वारा नयी प्रेरणाएँ मिलती रही, अतः वे सायास काव्यरचना नहीं करते थे । "वाद" का समर्थन करके डा. पवनकुमार मिश्र ने सूचित किया है कि, "प्रयोगशील शब्द वाद के आतंक से मुक्ति पाने के लिए किया जा सकता है लेकिन प्रकृति के बोध के लिए वाद शब्द अधिक उपयुक्त है ।[1]

प्रयोगवाद के प्रमुख कवि

सन् 1943 में प्रकाशित "तारसप्तक" के बाद प्रयोगवाद की शुरूआत हुई थी । इस संकलन के संपादक अज्ञेय के साथ अन्य कवि भी इस काव्यपद्धति में सम्मिलित हुए थे । तारसप्तक में गजाननमाधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, अज्ञेय आदि कवियों की कविताएँ संकलित हुई हैं । ये सातों कवि अन्वेषी है । नये नये प्रयोगों की वजह ही इस काव्यधारा के कवियों को प्रयोगवादी कवि कहे जाने लगे थे ।[2] लेकिन इसका तिरस्कार करते हुए अज्ञेय द्वारा यह घोषणा की गई कि, प्रयोग तो सभी काल के कवियों ने किए हैं, इसलिए हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी कहना ।[3]

तारसप्तक के बाद "दूसरा सप्तक", "तीसरा सप्तक", "निकष",

---

1. डॉ. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 12
2. डॉ. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 40
3. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ. 276

"विविधा" इत्यादि काव्य संकलनों एवं "प्रतीक", "पाटल", "कल्पना", "दृष्टिकोण", "अजन्ता", "राष्ट्रवाणी" आदि पत्रिकाओं के माध्यम से इसका विकास हुआ जो आगे चलकर नयी कविता में बदल गया ।[1] वास्तव में तारसप्तक का पुनर्मुद्रण परवर्ती काव्य प्रगति को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है । इसपर टिप्पणी करते हुए डॉ. नामवरसिंह ने कहा है कि, "इन सात कवियों का एकत्रित होना अगर केवल संयोग भी था तो भी वह ऐसा ऐतिहासिक संयोग हुआ जिसका प्रभाव परवर्ती काव्यविकास में दूर तक व्याप्त है ।"[2]

प्रयोगशीलता की भावना दूसरा सप्तक और तीसरा सप्तक के कवियों में भी निहित थी । भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुरसिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती, "दूसरा सप्तक" के प्रमुख कवि हैं । "तीसरा सप्तक" में प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथसिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना आदि कवियों के नाम संगृहीत हैं । इनमें अधिकांश कवि नई कविता के प्रमुख हस्ताक्षर भी रहे हैं ।

प्रयोगवादी काव्य प्रगतिवाद की अतिशय सामाजिकता की प्रतिक्रिया के रूप में अस्तित्व में आया था ।[3] यह काव्यधारा कमोबेश छायावादी मानसिकता की उपज है ।[4] इस काव्य पद्धति की प्रमुख प्रवृत्तियों पर विचार करना इस संदर्भ में समीचीन होगा । सत्य की खोज और प्राप्त सत्य को

---

1. डा. दयानन्द शर्मा - नई रचना और रचनाकार - पृ. 41
2. डा. नामवरसिंह - कविता के नए प्रतिमान - पृ. 76
3. डा. टी. एन. मुरली कृष्णम्मा - छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ - पृ. 161
4. डा. सुबासकुमार - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ. 186

उसको संपूर्णता में पाठकों तक पहुँचाना प्रयोगवाद की खास विशेषता है । परंपरा का निषेध और नये नये प्रयोगों की पक्षधरता भी इसमें विद्यमान है । भाषा को अपर्याप्त मानकर उसका पुन:संस्कार करना इसकी इच्छा रही । इनके द्वारा प्राप्त सत्य यह है कि सभ्यता की गुंजलक में पिसता कराहता तथा अभिजात्य वर्ग एवं निम्न वर्ग के मध्य अधर में त्रिशंकु सा लटकता मध्यवर्गीय व्यक्ति ही प्रयोगवादी काव्य का "सत्य" है ।[1]

प्रयोगवादी काव्यधारा की सबसे मुख्य प्रवृत्ति व्यक्तिसत्ता की प्रतिष्ठा है । व्यक्ति की महिमा पर बल देने के कारण इसकी सारी प्रवृत्तियाँ व्यक्ति केन्द्रित हैं । इस बात की पुष्टि करते हुए डा.सुबासकुमार का कथन है कि, "छायावादियों का"मैं" एक प्रतीक होता था, प्रगतिवादियों का "मैं" एक खास सामाजिक समूह का प्रतिनिधि, मगर प्रयोगवादियों का "मैं" वह खुद यानी एक निश्चित व्यक्ति मात्र होता था - और यह व्यक्ति अहंकेन्द्रित अन्तर्मुखी और खंडित चरित्रवाला था ।"[2] यानी व्यक्तिसत्ता के साथ अहंवाद, क्षणवाद, बौद्धिकता, अनास्था, पराजय, निराशा, कुण्ठा, घुटन, निरर्थकता, मुक्तिबोध जैसी प्रवृत्तियाँ भी जुड़ी हुई हैं । आगे हम एक एक होकर इन सभी प्रवृत्तियों का विश्लेषण करेंगे ।

---

1. डॉ.शैलसिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 43

2. डा.सुबासकुमार - आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ. 186

व्यक्ति सत्ता को प्रतिष्ठा

प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति व्यक्तिसत्ता की प्रतिष्ठा है । व्यक्ति की महिमा और उसकी वरीयता को यह काव्यधारा लक्षित करती है । व्यक्ति अस्तित्व एक मूल्यवान चीज़ है । इसकी सुरक्षा का बोध व्यक्ति मानव को निरंतर सताता रहता है । द्वितीय विश्वयुद्ध के परिवेश में व्यक्ति के अस्तित्व का हनन व्यापक रूप से होने लगा था । यद्यपि अपने निजीपन को कायम रखने की लगातार कोशिश की जाती थी फिर भी उसे महसूस होने लगा कि उसका अस्तित्व खतरे में है । इस संदर्भ में व्यक्तिचेतना का नारा लगाकर मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कवि काव्यक्षेत्र में आये थे । वे प्रयोगवादी कहलाने लगे क्योंकि उनकी कविताओं में व्यक्ति की सत्ता की समस्या के साथ नये नये प्रयोगों की भी भरमार रही थी ।

प्रयोगवादी कवियों ने अस्तित्ववादी चेतना को अपनाया था । व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्ति का अस्तित्व उनके काव्य के प्रमुख मुद्दे बन गए थे । अज्ञेय ने उल्लेख किया है कि मानव एक स्वतंत्र व्यक्ति है ।[1] हिन्दी साहित्य में कदाचित् यह प्रथम अवसर रहा था जब व्यक्ति अपने अस्तित्व की स्वतंत्र घोषणा करने लगा था ।[2] प्रयोगवाद के प्रमुख प्रवर्तक अज्ञेय की राय में व्यक्ति मानव समाज का निर्माता ही है -"मैं व्यक्ति को मूल सत्ता मानकर वहाँ से आरंभ करता हूँ । कर्ता होने के नाते मानव समाज का निर्माता है ।"[3]

---

1. अज्ञेय - अंतरा - पृ. 28
2. श्रीराम नागर - हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणास्रोत - पृ. 55
3. अज्ञेय - अंतरा - पृ. 28

वैयक्तिकता व्यक्ति की महिमा को पूर्ण प्रतिष्ठा प्रदान करती है । वह असामाजिक भावनाओं को भी जन्म देती है । व्यक्तिवादी स्वयं पर निर्भर रहता है । जीवन के संघर्ष में वह पराजय को स्वीकार करता है । नितांत व्यक्तिवादी व्यक्ति समाज की विषमताओं एवं विडम्बनाओं से संघर्ष करने के लिए अकेले ही तैयार होता है क्योंकि उसे अपने पुरुषार्थ पर अधिकतर विश्वास है ।[1]

व्यक्ति को प्रमुखता देने के कारण प्रयोगवादी काव्य व्यक्तिसापेक्ष है । लेकिन समाज को वह नकारता नहीं । वही समाज का केन्द्रबिन्दु है । व्यक्ति के माध्यम से ही समाज का अध्ययन होता है । इस तत्व की पुष्टि करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने अज्ञेय को उद्धृत करते हुए यों स्पष्ट किया है - "अज्ञेय समाज का अध्ययन व्यक्ति के माध्यम से करते हैं न कि व्यक्ति का माध्यम समाज के माध्यम से । इनमें पहली दृष्टि स्पष्ट ही वैज्ञानिक और तर्कसंगत है । दूसरे ढंग में तो अंग्रेज़ी मुहावरे के अनुसार गाड़ी को घोड़े के आगे जोतना है ।"[2] अतः व्यक्ति ही प्रमुख है । व्यक्ति को समाज में अपनी उपस्थिति पर कतई निराश होने की ज़रूरत नहीं क्योंकि अपनी शक्ति के अनुसार समाज के हितार्थ वह कुछ न कुछ करने के लिए स्वतंत्र है -"जिस प्रकार समाज रूपी शरीर में आँखरूपी व्यक्ति अपने स्थान पर नियत है, पर अपनी शक्ति से दूर दूर तक को देखने के लिए स्वतंत्र है, उसी प्रकार व्यक्ति की मेधा भी समाज में कुंठित नहीं हो जाती ।"[3]

---

1. डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप - पृ. 105
2. अज्ञेय - आधुनिक रचना की समस्या - पृ. 158
3. डा. रांघेय राघव - आधुनिक हिन्दी कविता में विषय और शैली - पृ. 37

प्रयोगवादियों की मान्यता है कि इस विराट जनसमूह में व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा होनी चाहिए । उनकी कविताओं में जो व्यक्तिवादी दृष्टि है वह अहं की अभिव्यक्ति पर ज़ोर देती है । तारसप्तक के कवियों में अज्ञेय ने ही व्यक्तिवादी दृष्टि पर सब से ज़्यादा बल दिया है । "जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी संपूर्णता में पहुँचाया जाये - यही पहली समस्या है जो प्रयोगशीलता को ललकारती है ।"[1] इस समस्या के साथ व्यक्ति अपने आप में सीमित हो गया है, जीवन की बढ़ती हुई जटिलता के परिणामस्वरूप व्यापकता का घेरा क्रमशः अधिकाधिक सीमित होना चाहता है ।[2] कवि का यह कथ्य उसकी आत्मा का सत्य ही है ।[3]

तारसप्तक की रचनाओं में बुद्धिवादी व्यक्ति के मन में जो घुटन, शंका, अनास्था, आक्रोश और अनास्था होती है उनकी खुली अभिव्यक्ति हुई है । मुक्तिबोध का कथन है कि, "मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढनेवाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति है उनका सत्य और मूल्य उसी जीवन स्थिति में छिपा है ।"[4]

नेमिचन्द्र जैन का मत है कि मनुष्य अपनी ज़िन्दगी की राह में पग पग पर होनेवाली टकराहट से अकेला हो जाता है । तब वह किसी की गोद में मुँह छिपाना चाहता है । अपने भीतर ही आत्मस्थ हो रहना चाहता है ।"[5]

---

1. अज्ञेय - तारसप्तक "वक्तव्य" - पृ. 277
2. वही - पृ. 275
3. वही - पृ. 275
4. वही - पृ. 43
5. वही - पृ. 5

शकुन्तला माथुर का कथन है कि काव्यरचना मैं ने अपने ही आपको सन्तुष्ट करने के लिए की थी - एकदम स्वान्त सुखाय । पर अब चाहती है कि वह जीवन के वास्तविक वातावरण और परिस्थितियों की ज़मीन पर जन्म ले इसी में उसकी पूर्णता है ।[1]

व्यक्तिवाद का एक भिन्न स्वर विजयदेव नारायण साही का है । "तीसरा सप्तक" में उनकी मान्यता यों स्पष्ट की गयी है कि मैं परम स्वतंत्र हूँ । मेरे सिर पर कोई नहीं है । अर्थात् अपने किये के लिए मैं शत-प्रतिशत जिम्मेदार हूँ । मैं संसार का सबसे महत्वपूर्ण प्राणी हूँ । सर्वोच्च समाज वह है जिसमें व्यक्ति को केवल अधिकार ही अधिकार हो, कर्तव्य कोई नहीं । अर्थात् जो भी मैं चाहूँ वह मुझे मिल जाय, लेकिन जो मैं देना न चाहूँ वह मुझे देना न पड़े ।"[2]

प्रयागनारायण त्रिपाठी के अनुसार आज के जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति ही आज के कवि की प्रधान और सच्ची अभिव्यक्ति है । ऐसी ही अभिव्यक्ति के लिए वह निरन्तर सचेष्ट है, निरन्तर प्रयोगशील है, निरन्तर अन्वेषी है । यह अभिव्यक्ति व्यक्तिगत होकर भी समष्टि से संश्लिष्ट हो सकती है और समष्टिगत होकर भी व्यक्ति की अनुभूत हो सकती है ।[3]

---

1. दूसरा सप्तक - पृ. 31
2. तीसरा सप्तक - पृ. 175
3. वही - पृ. 32

प्रयोगवादी कवियों में व्यक्तिवाद का प्रारंभिक स्वर अज्ञेय की कविताओं में ही सुनाई पड़ता है । उनमें व्यक्तिसत्य को व्यापक सत्य बनाने की प्रवृत्ति है । व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा के प्रमुख समर्थक अज्ञेय की कविता है "नदी के द्वीप" । इस कविता में व्यक्ति सत्ता का सही चित्रण मिलता है । नदी समाज का और द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है । व्यक्ति को समाज के प्रति कोई विद्रोह नहीं होता परन्तु वह अपने अस्तित्व को बरकरार रखना चाहता है । अतः अपने अस्तित्व से वंचित रहना वह अन्याय समझता है । व्यक्ति इकाई की पहचान के साथ अपनी व्यापक समाजोन्मुखी भावना भी इसमें अंकित की गयी है -

किन्तु हम है द्वीप
हम धारा नहीं है
स्थिर समर्पण है हमारा । हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं । क्योंकि बहना रेत होना है ।
हम बहेंगे तो रहेंगे नहीं ।[1]

अज्ञेय ने व्यक्ति सत्ता का अध्ययन करते हुए प्रकृति से ही उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । सागर के झाग से सहसा उछलती बूँद एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है जो समाज में रहते हुए भी समाज से बढ़कर है । अपने अस्तित्व की प्रमुखता ही उनकी "मैं ने देखा: एक बूँद" कविता में व्यंजित हुई है -

मैं ने देखा
एक बूँद सहसा

---

1. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पूर्वा - पृ. 25।

उछली सागर से झाग से
रँगी गयी क्षण भर
ढलते सूरज की आग से ।
- मुझको दीख गया
हर आलोक छुआ अपनापन
है उन्मोचन
नश्वरता के दाग से ।[1]

अन्य प्रयोगवादी कवियों की अपेक्षा अज्ञेय को सबसे बड़े व्यक्तिवादी कवि मानना ही समीचीन है । "आधुनिक सामाजिक परिवेश में वह घोर व्यक्तिवादी है, जिसकी प्रतिक्रिया उनके काव्य में विभिन्न रूप में दृष्टिगत होती है । यौन भावना की प्रचुरता, कुंठा और अतृप्ति का प्रदर्शन आदि सभी उनकी व्यक्तिवादी चेतना के परिणाम है ।"[2] व्यक्ति को ऊँचा स्थान देकर अज्ञेय ने लिखा है -

छोटी ही है, पर, सागर
मेरी भी एक कहानी है ।[3]

उन्होंने प्रकृति के माध्यम से व्यक्ति का संकेत करके उसको वनानल के रूप में चित्रित किया है -

पर कोई बताये
कि क्या कवि
वही नहीं है जिसे पता है
कि मैं ही वह वनानल हूँ

---

1. अज्ञेय "मैं ने देखा एक बूँद" अरी ओ करूणाप्रभामय - पृ. 141
2. डॉ. बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - पृ. 331
3. "सागर मुद्रा - 12" "आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि - 10 अज्ञेय संपादक- विद्यानिवास मिश्र - पृ. 120

जिनमें मैं ही ।
अनुपल जलता हूँ ।[1]

"हरी घास पर क्षण भर" काव्यसंग्रह में कितनी शान्ति, प्रणति, तुम्हीं हो क्या बन्धु वह दीप ये अगणित, आत्मा की बोली, नदी के द्वीप आदि कविताओं में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति हुई हैं । आज के यांत्रिक जीवन से अपनी निजता की खोज करने का प्रयास कवि ने स्पष्ट किया है -

आओ बैठो
तनिक और सटकर, कि हमारे बीच स्नेह भर का व्यवधान रहे, बस
नहीं दरारें सरल शिष्ट जीवन की ।
x x x x
नहीं सुनें हम वह नगरी के नागरिकों से
जिनकी भाषा में
अतिशय चिकनाई है साबुन की ।[2]

"इन्द्रधनु रौंदे हुए थे" में सत्य तो बहुत मिले, मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ, मैं वहाँ हूँ मेरे विचार है द्वीप जैसी कवितायें व्यक्ति की अनुभूतियों की झाँकी को प्रस्तुत करती हैं -

मैं, मैं, क्या मैं भी उत्तरदायी नहीं हूँ ?
इतिहास के प्रति
चेहरे के प्रति
परंपरा के प्रति
मुकुर के प्रति
बालकों के भविष्य के भोले विश्वास के प्रति
क्या मैं उत्तरदायी नहीं हूँ ?

---

1. नन्दादेवी - 10 सागर-मुद्रा - पृ. 48
2. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 246

× × × ×

पर डरो मत,

मैं मरूँगा नहीं

क्योंकि मैं अधूरा नहीं मरूँगा, अतृप्त नहीं मरूँगा ।

तुम मर कर प्रेत हो सकते हो, क्योंकि तुम अपने हो

मैं नहीं मर सकता क्योंकि मैं तुम्हारा हूँ

मैं प्रतिभू हूँ, मैं प्रतिनिधि हूँ, मैं सन्देशवाहक हूँ ।[1]

अज्ञेय ने "इत्यलम" में भी व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का उन्मुक्त चित्रण किया है । बन्दी स्वप्न, हिय हारिल, वंचना के दुर्ग, मिट्टी की ईहा जैसी कविताएँ व्यक्तिवादी चेतना से भरित हैं । "हिय हारिल" में उडने की आकुलता हारिल पक्षी को निरन्तर होती रहती है । लेकिन चारों ओर उसे शून्य नभ घेरता है । यह शून्य नभ कवि की दृष्टि में समाज है जो व्यक्ति को बन्धन में रखता है । इस बन्धन से मुक्त होने के लिए वह तडपता रहता है-

खोल दो सब बन्धनों के दुर्ग के ये रुद्ध सिंहद्वार[2]

अज्ञेय ने व्यक्त मानव की व्यतिरिक्तता को दर्शाते हुए यों भी लिखा है -

जो मेरा है

वह बार बार मुखरित होता है

पर जो मैं हूँ

उसे नहीं वाणी दे पाता ।[3]

---

1. अज्ञेय -"मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 36

2. अज्ञेय - "हिय हारिल" इत्यलम - पृ. 189

3. अज्ञेय - "मैं मेरा तू तेरा" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 36

"क्योंकि तुम हो" कविता में उन्होंने अपने कवि होने की इयत्ता को वाणी दी है -

तुम तुम हो ; मैं - क्या हूँ ?
ऊँची उडान, छोटे कृतित्व की लम्बी परंपरा हूँ,
पर कवि हूँ, स्रष्टा, द्रष्टा, दाता
जो पाता
हूँ अपने को भट्ठी कर उसे गलाता चमकाता हूँ ।[1]

व्यक्ति चेतना की ज्वलन्त मिसाल मुक्तिबोध की "अन्तर्दर्शन" कविता में उभर आती है -

"मैं अपने से ही सम्मोहित, मन मेरा डूबा निज में ही
मेरा ज्ञान उठा निज में से मार्ग निकाला अपने से ही ।।
मैं अपने में ही जब खोया तो अपने से ही कुछ पाया ।
निज का उदासीन विश्लेषण आँखों में आँसू भर लाया ।"[2]

"तीसरा सप्तक" के कवि प्रयागनारायण त्रिपाठी ने भी व्यक्ति को केन्द्र में रखा है -

बिन्दु हूँ मैं
मात्र केन्द्राभास ; वह जो
हर असीम ससीम का
हर रूप हर आकार का विस्तार,
प्राणाधार,
फिर भी चिर-अरूप, अमाप
अपनी मुक्ति में सन्नद्ध ।[3]

---

1. अज्ञेय - "क्योंकि तुम हो" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 46
2. तारसप्तक - अन्तर्दर्शन - पृ. 67
3. तीसरा सप्तक - मैं बिन्दु - पृ. 28

"यह उद्वेलन" कविता में त्रिपाठी ने अन्तरात्मा की तड़प को वाणी दी है -

मेरी अन्तरात्मा का यह उद्वेलन
जो तुम्हें, और तुम्हें और तुम्हें देखता है
और अभिव्यक्ति के लिए तड़प उठता है -
यह है मेरी स्थिति, यही, मेरी शक्ति
इसी से संलग्न मैं उन्नीत हूँ -[1]

"मकड़ी जाल" कविता में कवि ने व्यक्ति मानव के लिए "मकड़ी" का प्रयोग किया है -

मेरे चारों ओर बिछ गया है जो यह रेशमी जाल
मैं ने ही तो उसको मकड़ी बन-बन कर दिन-रात बुना है ;
नये नये झीने तारों को
अपने से बाहर फैलाते जाने का रंगीन मोह
मैं ने ही रह-रह कर पाला है
अगर आज मैं उलझ गया हूँ
अपनी ही आत्मा से निर्मित इन तारों में
अगर प्रतीक्षा-रक्त-पिपासा-तृप्ति-प्रतीक्षा-रक्त-पिपासा -
यही हो गया है जीवनक्रम ।[2]

कीर्ति चौधरी ने भी व्यक्ति को अपनी कविताओं के केन्द्र में रखा है । "दायित्व भार" कविता में इसकी स्पष्ट झलक होती है -

पर मेरे मन में अमित चाह
दिखती है मुझ को स्पष्ट राह

---

1. तीसरा सप्तक - मैं बिन्दु - पृ. 11
2. प्रयागनारायण त्रिपाठी - मकड़ी जाल - तीसरा सप्तक - पृ. 26

कुछ देर भले ही लग जाये
दिन चले चाँद भी उग आये
मैं कर्मशील,
मैं जागरूक
दायित्व संभाले बैठा हूँ -
जब होगा तो मुझ से होगा
इसी आशा में ।[1]

"प्रस्तुत" कविता में भी कवयित्री ने व्यक्ति के मन में जो संघर्ष एवं दुख की अनुभूति है उसकी अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया है । निम्न पंक्तियों में यह बात स्पष्ट है -

मैं प्रस्तुत हूँ,
इन कई दिनों के चिन्तन और संघर्ष बाद,
यह क्षण जो अब आ गया है,
उनमें बँध कर मैं प्रस्तुत हूँ,
तुमसे सबकुछ कह देने को ।
वह जो अब तक यों छिपा चला आया,
ज्यों सागर तो रत्नाकार ही कहलाता है,
अन्दर क्या है, यह ऊपरवाला क्या जाने ।[2]

"एक साँझ" कविता में व्यक्ति को एक प्रवासी के तौर पर अंकित करने की कोशिश की गयी है । प्रवासी की वैयक्तिक अनुभूतियों पर इसमें प्रमुखता दी गयी है -

मैं तो प्रवासी हूँ
ऊँचा यह बारह-खम्भिया महल,
औरों का ।

---

1. कीर्ति चौधरी - दायित्व भार -तीसरा सप्तक - पृ. 36
2. कीर्ति चौधरी - प्रस्तुत - तीसरा सप्तक - पृ. 47

दुग्ध-धवल आँखों में,
अंजन-सी आँजी साँझ,
कजरारी, बाँकी, कँटीली,
उस चितवन-सी सजी साँझ,
औरों को ।[1]

कुँवर नारायण ने अपने वक्तव्य में लिखा है, "अस्तित्व की मैं ने दो बुनियादी परिस्थितियाँ मानी हैं - एक तो व्यक्ति और अज्ञान ; तथा दूसरी, व्यक्ति और उसका सामाजिक वातावरण ।" "पगडण्डी" कविता में उन्होंने व्यक्ति की सत्ता को ढाल दिया है । कविता की पंक्तियाँ आरंभ से ही व्यक्तिकेन्द्रित होती हैं -

रात के हौले स्पन्दन में निरापद
मैं अनींद पथ हूँ ।
x x x x
कभी यदि -
विशाल जन समूह से इस वन में आना,
कभी यदि -
दिशा-भ्रान्त अपने एकान्त में
मुझे खोज पाना
तो पल भर विश्वास कर मुझको अपनाना[2]

विजयदेव नारायण साही की कविता का आधार आस्था है जिसके पच्चीस शील है ।[3] आत्मनिष्ठता एवं व्यक्तिचेतना का तीव्रतर स्वर उनकी कविताओं में

---

1. कीर्ति चौधरी - एक साँझ - तीसरा सप्तक - पृ. 55
2. मदन वात्स्यायन - पगडण्डी - तीसरा सप्तक - पृ. 171-172
3. विजयदेवनारायण साही - वक्तव्य तीसरा सप्तक - पृ. 175

मिलता है । "खोल दिया पिंजरा" कविता में व्यक्ति की स्वतंत्रता और अस्तित्व पर बल देते हुए व्यक्ति को महत्व देने का प्रयत्न किया जाता है -

तुम ने क्या सोचकर
खोल दिया पिंजरा
और मुझे नीले आकाश में उड़ा दिया ?
सत्य है कि तुमने इस बार नहीं
काटे मेरे उगे पंख,
कुछ नहीं छोड़ा
मेरा सब मुझको लौटा दिया,
मन की निर्बन्ध प्यास, ऋद्धियाँ भुजाओं की
पैरों की अथक जलन, वक्ष की उदात्तता,
जो कुछ था मुझमें,
सब पहले-सा जोड़ दिया,
और एक आखिरी उसाँस ले,
तुमने बन्द द्वार की सलाखों को तोड़ दिया ।[1]

"दर्द की देवापगा" कविता में भी कवि ने व्यक्ति की स्वतंत्र सत्ता का परिचय दिया है -

खोल दो मेरी शिराएँ खोल दो ;
तोड़ दो, मेरी परिधियाँ तोड़ दो
बहो, बहो,
फूट करके बहो,
मेरे दर्द की देवापगा ।[2]

---

1. विजयदेव नारायण साही - "खोल दिया पिंजरा" तीसरा सप्तक - पृ. 197
2. विजयदेवनारायण साही - "दर्द की देवापगा" तीसरा सप्तक - पृ. 181

उपर्युक्त विवेचन से यह बात जाहिर होती है कि प्रयोगवादी कवि "व्यक्ति सत्य"और "व्यापक सत्य" की दो पराकाष्ठाओं के बीच के स्तरों में से व्यक्ति सत्य पर ही अपना ध्यान केन्द्रित किया है और ज़्यादातर बल भी दिया है । यानी व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा उनके काव्य का लक्ष्य रहा है । उनकी कविता ही नहीं, बल्कि उनका कथ्य भी इस बात का साक्ष्य है । जैसे खुद कवि अज्ञेय ने उल्लेख किया है -"कवि का कथ्य उसकी आत्मा का सत्य है ।"[1]

अहंवाद

प्रगतिवाद में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विलयन ही समाज के हित के लिए अनिवार्य माना गया था । किन्तु जैसे विश्लेषण किया गया है काव्य में व्यक्ति की सत्ता एवं व्यक्ति के अलग व्यक्तित्व को वरीयता दी गई थी । इसलिए व्यक्ति का अहंग्रस्त होना स्वाभाविक भी था । अज्ञेय ने इस संदर्भ में कहा है कि "अन्य मानवों को भाँति अहं मुझ में भी मुखर है और आत्माभिव्यक्ति का महत्व मेरे लिए भी किसी से कम नहीं है ।[2] और एक संदर्भ में अज्ञेय ने अहं के महत्व पर लिखा है -"कला संपूर्णता की ओर ले जाने का प्रयास है, व्यक्ति की अपने को सिद्ध प्रमाणित करने की चेष्टा है अर्थात् वह अंततः एक प्रकार का आत्मदान है जिसके द्वारा व्यक्ति अहं अपने को अक्षुण्ण रखना चाहता है ।"[3]

प्रयोगवादी कविता की चेतना व्यक्तिवादी है । व्यक्तिवाद में

---

1. अज्ञेय का वक्तव्य - पहला तारसप्तक - पृ. 275
2. तारसप्तक वक्तव्य - पृ. 277
3. अज्ञेय - त्रिशंकु - पृ. 28

व्यक्ति का स्थान सर्वोपरि है । व्यक्ति अहंवादी भी होता है क्योंकि वैयक्तिक चेतना उसकी सबसे बड़ी विशेषता है । लेकिन वह समाज से कटा हुआ नहीं है । वैयक्तिकता पर बल देने के कारण व्यक्ति की निजी अनुभूतियों का विश्लेषण भी प्रयोगवादी कविता में यत्रतत्र दर्शनीय है । अन्य काव्यपद्धतियों की अपेक्षा प्रयोगवादी कविता में व्यक्ति की अनुभूतियों का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलता है । डॉ. रामसजन पाण्डेय के अनुसार, "सामान्य रूप में रचनाकार की यही आत्मानुभूति सर्वानुभूति बनकर साहित्य की संज्ञा धारण करती थी और करती है ; लेकिन सबसे पहले प्रयोगवाद में इस वैयक्तिकता को समाजोन्मुखता से काटकर बिलकुल एकाकी कर दिया गया, परिणामतः प्रयोगवादी काव्य में नितांत व्यक्ति की अपनी अनुभूति और भावना अभिव्यंजित हुई है । वस्तुतः प्रयोगवादी कवियों की घनघोर वैयक्तिकता उनका अहं या उनके अहंभाव से ही पैदा हुई है ।"[1]

अहं कलाकार के लिए एक अनिवार्य तत्व है । उसकी कला के विकसित करने में अहं का अपना स्थान रहता है । इस पर टिप्पणी करते हुए श्री लक्ष्मीकांत वर्मा का कथन उल्लेखनीय है कि, "कला के वास्तविक आयाम और उसके वास्तविक अर्थ को बिना अहं के प्राप्त ही नहीं किया जा सकता । आंतरिक यथार्थ और अनुभूति का सूक्ष्म विवेचन और उस विवेचन के साथ व्यापक यथार्थ का सन्तुलन, यह कलाकार के अहं के माध्यम से ही हो पाता है ।"[2]

अहंवादी होने पर ही व्यक्ति समाज का साक्षात्कार कर सकता

---

1. विविध - साहित्यिक वाद - पृ. 99
2. नयी कविता के प्रतिमान - पृ. 239

है । वह समाज से अलग नहीं हो सकता बल्कि समाज की इकाई के रूप में ही समाज में अपने अस्तित्व का समर्थन करता है । लक्ष्मीकांत वर्मा ने दुहराया है कि, "सामाजिक दायित्व को पूर्णतया निभानेवाला व्यक्ति भी अहंवादी हो सकता है । अहंवादी होना दोष नहीं है । अहं विकृति नहीं है । इसके विपरीत अहं प्रकृति है, इसलिए कि वह अपने अस्तित्व का समर्थन है । अहं केवल अपने अस्तित्व की मांग करता है, उसकी स्वीकृति चाहता है और उसके माध्यम से जीवन, सौंदर्य और समाज का साक्षात्कार करना चाहता है ।[1] स्पष्ट है कि अहं अपने अस्तित्व की स्वीकृति है । इसलिए व्यक्ति या कलाकार को अपनी नियति और अपनी सत्ता के प्रति जागरूक रहना अनिवार्य है ।

प्रयोगवादी कवि अपने अस्तित्व के प्रति सदा जिज्ञासु है । समाज में रहते हुए भी व्यक्ति पहले है बाद में समाज की उपस्थिति होती है । अपने अहं को दीप से तुलना करके अज्ञेय कहते हैं -

दीपक हूँ मस्तक पर मेरे
अग्नि शिखा है नाच रही
यही सोच समझा था शायद
आदर मेरा करे सभी ।[2]

उन्होंने दीपक को अहं के रूप में चित्रित करके उसे निरन्तर जलते रहने की इच्छा प्रकट की है । एक दूसरी जगह अज्ञेय का अहं ज्योति के समान प्रस्पष्ट हुआ है -

ज्योति तुम्हारी अक्षय है पर
जला जलाकर नहीं बनी है -

---

1. नयी कविता के प्रतिमान - पृ. 223
2. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 18

और इधर यह शिखा कम्पमय
यह मेरी कितनी अपनी है ।
मैं मिट्टी हूँ, पर तुम हो ओ धन्य इसे अपनाकर
यह तो मेरी ज्योति दिवाकर ।[1]

अज्ञेय के काव्य में अहं विभिन्न रूपों में व्यक्त हुआ है । एक ओर उनका विराट अहं बार बार झांकता रहता है तो दूसरी ओर अज्ञेय का सचेतन मन उसे लहूलुहान करता हुआ दृष्टिगोचर होता है । काव्य के प्रारंभिक दौर में उसका विस्फोट तीव्र था और उस पर इयत्ता की स्फीति हावी थी । उनका व्यक्तित्व सामाजिक श्रृंखला से एकदम अलग हो गया था -

तुम्हारा यह उद्धत विद्रोही,
घिरा हुआ है जग से, पर है सदा अलग निर्मोही ।[2]

"जनाह्वान" कविता में अज्ञेय की "मैं" से हम हो जाने की गर्वोक्ति अपने अहं के द्योतक है । कवि स्वीकार करते हैं कि अहंकार ने मुझे हराया है । कविता के आरंभ में कवि के अहं का उग्र रूप सामने आता है बाद में उनका दृष्टिकोण परिवर्तित हो जाता है -

क्षण भर स्थिर खड़ा रह ले -
मेरे दृढ पौरुष की एक चोट सह ले ।
नूतन प्रचण्डतर स्वर से
आततायी, आज तुझको पुकार रहा मैं -

---

1. अज्ञेय - त्रिशंकु - पृ. 28
2. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 87

रणोद्यत दुर्निवार ललकार रहा मैं -
कौन हूँ मैं ?
तेरा दीन दुःखी पददलित पराजित
आज जो कि क्रुद्ध सर्प-से अतीत को जगा
"मैं" से "हम" हो गया ।
"मैं के झूठे अहंकार ने हराया मुझे
तेरे आगे विवश झुकाया मुझे,
किन्तु आज मेरे इन बाहुओं में शक्ति है,[1]
मेरे इस पागल हृदय में भरी भक्ति है,

पराजय भूलकर भी कवि अपने अहं को साबित करने की धुन में हैं -
शक्ति असीम है,
मैं शक्ति का एक अणु हूँ
मैं भी असीम हूँ ।[2]

अज्ञेय का अहं अपनी पराकाष्ठा में आकर सृजनकर्ता को ललकारता है -
मैं मरूँगा सुखी
क्योंकि तुमने जो जीवन दिया था -
{पिता कहलाते हो तो
जीवन के तत्व पाँच
चाहे जैसे पुंजबद्ध हुए हों
श्रेय तो तुम्हीं को होगा -}
उससे मैं निर्विकल्प खेला हूँ

---

1. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ. 280
2. अज्ञेय - इत्यलम् - पृ. 93

खुले हाथों उसे मैं ने वारा है
धज्जियाँ उड़ाई हैं ।[1]

अज्ञेय अपने अहं के कारण ईश्वर को ललकारने में भी गर्व का अनुभव करते हैं । उन्होंने खुद अपने को ईश्वर तक माना है -

जगा हूँ मैं
क्यों करूँ आराधना उस देवता की
जो कि मुझको सिद्धि तो क्या दे सकेगा -
जो कि मैं ही स्वयं हूँ ।[2]

मुक्तिबोध ने "नूतन अहं" में अहं को अभिव्यक्ति देने के लिए यों लिखा है -

अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में
जैसे घूरे पर उठा है
धृष्ट कुकुरमुत्ता ।[3]

मछली प्रायः अहंलीन आत्मस्थ व्यक्तिवाद के लिए प्रयुक्त शब्द है । कवि ने "मीन" के रूप में एक सत्यान्वेषी कलाकार को भी दर्शाया है -

मैं महाशोधक महाशय सत्यजल का मीन हूँ मैं
सत्य का मैं ईश औ" मैं स्वप्न का हूँ परम स्रष्टा ।[4]

---

1. अज्ञेय - इत्यलम् - पृ. 224
2. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 21
3. मुक्तिबोध - नूतन अहं - तारसप्तक - पृ. 58
4. मुक्तिबोध - आत्मसंवाद - तारसप्तक - पृ. 69

अहं का स्वस्थ एवं आशावादी रूप श्रेष्ठ है । अहं वादी व्यक्ति में जिजिविषा की आशा होती है । वह हरदम इस आसक्ति को मन में रखकर ही चलता फिरता है । समाज में अपने अहं को सुरक्षित रखने की आतुरता लेकर ही उसका प्रयाण होता है । अज्ञेय ने भी मछली का चित्र हमारे सम्मुख रखा है जिसके मन में जिजीविषा है -

हम निहारते रूप
काँच के पीछे
हाँफ रही है मछली ।
रूप-तृषा भी रूप-तृषा भी
{और काँच के पीछे}
है जिजीविषा[1]

प्रयोगवादी कवि अपने व्यक्तित्व और अस्तित्व के प्रति जिज्ञासु रहे हैं । समाज में रहते हुए भी वे अपनी अस्मिता की अलग पहचान रखना चाहते हैं । नरेश मेहता ने अपने अहं को एक दूसरे ढंग से अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है । अपने को गगन की ऊँचाइयों की ओर ले जाने का विचार कवि के मन में होता है । यानी कवि अपने को ऊँचा गगन ही मानते हैं -

मेरी अहं की मीनार की ही नींव में
एक पत्थर हिचकियाँ है ले रहा ?
एक हिचकी ।
प्रतिध्वनित हो चाहती इतिहास होना ?
आह ! मैं: ऊँचा गगन,
और नींव का पाताल । आँसू की नदी में ।[2]

---

1. सोन मछली - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-10 - अज्ञेय - पृ. 78
2. नरेश मेहता - अहं दूसरा सप्तक - पृ. 111

उन्होंने अपनी दृष्टि एक अलग तरीके से पुन: व्यक्त किया है । अहं से ग्रस्त कवि के मन में अपनी अस्मिता की पहचान होने पर कई प्रकार की आकांक्षायें पनपती है । वे लिखते हैं -

विश्व के इस रेत वन पर
मैं अहं का मेघ हूँ
× × ×
क्या तुम नहीं देखते ?
आज मेरे कन्धों पर गगन बैठा हुआ है
आह पर ये अश्रु किसके ?
हुँकार से मैं घाटियों की गोद को भरता रहूँगा ।[1]

धर्मवीर भारती की "कविता की मौत" शीर्षक कविता रूढ और जर्जर परंपरा से मुक्त है । साथ ही स्वतंत्र अस्तित्व के लिए अहम की प्रतिष्ठा भी करती है । कविता ऐसी है -

क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी
अभी मेरी आखिरी आवाज़ बाकी है ।[2]

प्रयागनारायण त्रिपाठी ने अपने अहं को स्पष्ट करते हुए कहा है कि अहं अपने मन का माखन है । कवि इसे बनाये रखना चाहते हैं -

मुझमें कुछ है
जो मेरा है बिलकुल अपना है
जो मेरे क्षीरोज्वल मन के मनथन का कोमल माखन ।
जिसको मैं ने बहुत टूटकर

---

1. नरेश मेहता - अहं - दूसरा सप्तक - पृ. 111
2. धर्मवीर भारती - "कविता की मौत" दूसरा सप्तक - पृ. 188

बहुत बहुत अपने में रहकर

बहुत बहुत सहकर पाया है

जिसको अहरह दुलराया है ।[1]

अहं अपना रूप दिखाने के लिए कभी कभी बाहर आता है परन्तु उसी प्रकार वह अंदर में सिमटता भी है । इसको व्यंजित करते हुए कीर्ति चौधरी ने लिखा है -

यह कछुए की मेरी आत्मा

पंजे फैला

असली स्वरूप जो तुम्हें दिखाने को,

उत्सुक हो बैठी है

क्या जाने अगले क्षण की ही आहट को पा

सबकुछ अपने में फिर समेट ले अन्दर[2]

नरेश कुमार मेहता अहं की प्रतिष्ठा करते हुए बन्धन या परंपरा से मुक्त हो जाना चाहते हैं । उनका कथन है कि - हिन्दी में प्रयोगों की आवश्यकता दिन-ब-दिन बढती जा रही है । "नया तो मेरा युग है, मेरी प्रकृति है, तथा सबसे नया मैं हूँ ।"[3]

अतः यह बात स्पष्ट जाहिर है कि प्रयोगवादी कवि व्यक्ति को वरीयता देने के कारण अवश्य अहंभावी भी हो गये हैं । यानी अहंवाद व्यक्ति की अस्मिता और अलग पहचान का ठोस आधार है - लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि अहंवादी होने के कारण ये समाज निरपेक्ष है, समाज में उनका कोई सरोकार नहीं, बल्कि समाज सापेक्ष रहते हुए अपनी अलग हैसियत के प्रति जागरूक रहने का ज्वलंत सबूत है यह अहंवाद ।

---

1. प्रयागनारायण त्रिपाठी - "समाधिस्थ" तीसरा सप्तक - पृ. 7
2. कीर्ति चौधरी - "प्रस्तुत" तीसरा सप्तक - पृ. 47
3. नरेशकुमार मेहता - वक्तव्य - दूसरा सप्तक - पृ. 109

क्षणवाद

प्रयोगवादी काव्यधारा में क्षण का महत्वपूर्ण स्थान है । क्षणवाद व्यक्तिवाद का अभिन्न पहलू है । क्षणवाद का उद्भव पश्चिम में हुआ था । बीसवीं सदी के विश्वयुद्धों की विभीषिका ने मानव के जीवन मूल्यों को विघटित कर दिया था । उसकी रिक्त एवं खोखली अन्तरात्मा क्रमभग्न बन गयी थी । पश्चिमी विचारकों ने इस समस्या को सुलझाने का प्रयास किया था । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मानव की आत्मगरिमा और आत्मतुष्टि नष्ट होते समय वह अनियमित एवं असंगतिपूर्ण आचरण करता है । विभिन्न परिस्थितियों में वह नियति को थपेड़ें खाकर रहने लगता है । यानी निरर्थक एवं विशृंखल क्षणों के उत्तेजित प्रवाह में उसे किसी मूल्य की प्रतीति नहीं होती । वह बिलकुल निरर्थक ढंग से उस वस्तु को उस क्षण में ललक के साथ ग्रहण कर लेता है । तब उसके भीतर का शून्य अनायास उस वस्तु से भर जाता है । यह क्षण की अनुभूति है ।[1] अस्तित्ववादी दार्शनिक जिन्होंने व्यक्ति सत्ता पर ज़ोर दिया है । क्षण की महत्ता पर भी विशेष बल दिया है । उनकी मान्यता है कि जीवन का एक आनन्दमय क्षण संपूर्ण जीवन से अधिक श्रेष्ठतम होता है ।[2]

शून्य एवं बेसहारे व्यक्ति की आत्मतृप्ति के हेतु यह प्रवृत्ति प्रयोगवादी काव्यधारा के अन्तर्गत आयी है । क्षणवादी वर्तमान के प्रति सजग रहता है, भविष्य के प्रति उसके मन में कोई मोह नहीं होता । इस मानसिकता की पृष्ठभूमि द्वितीय विश्वयुद्ध जनित सामाजिक परिवेश ही है । मूल्य विघटन रिक्तता खोखलापन आदि से कुंठित मानव की संवेदनाओं को मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास प्रयोगवादी कवियों ने किया था ।

---

1. डॉ. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ. 467
2. डॉ. कौशलनाथ उपाध्याय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप - पृ. 95

अज्ञेय ने टी.एस.इलियट से पश्चिमी प्रभाव को स्वीकार करते हुए क्षण को महत्ता को अंकित करने में गौरव का अनुभव किया है । दरअसल कवि की संवेदनाओं के जिस क्षण में मनोवैज्ञानिक सत्यों का साक्षात्कार होता है उस क्षण को पूर्ण निश्छलता के साथ पाठकों और श्रोताओं के लिए संप्रेषित कर देना उनका परम कर्तव्य है ।[1]

अज्ञेय ने "क्षण" पर अपना विचार यों प्रस्तुत किया है, "क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं है, अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है...... और कवि साधारणीकरण द्वारा जिस अनुभूति का प्रेषण करता है वह काव्यानुभूति जीवन की अनुभूति से अलग होती है ।[2]" उनकी बहुतायत कविताओं में क्षण की महत्ता को व्यंजित किया गया है । सपने में प्रेमिका की पलकों का कंपन क्षण भर के लिए निहारने की ललक में जो प्रेमी बैठा है उसके मनोभाव को अज्ञेय ने अंकित करके क्षण के महत्व को यों स्पष्ट किया है -

तुम्हारी पलकों का कँपना ।
सपने की एक किरण मुझको दो ना,
है मेरा इष्ट तुम्हारे उस सपने का कण होना ।
और सब समय पराया है ।
बस उतना "क्षण" अपना ।
तुम्हारी पलकों का कँपना ।[3]

जैसे सूचित किया गया कि क्षणवादी वर्तमान में जीता है । भविष्य के प्रति उसके मन में कोई सपना नहीं होता है ।[4] एक क्षण में अगस्त्य महर्षी ने महासागर

---

1. द्वारिका प्रसाद सक्सेना - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ. 426
2. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ. 168
3. अज्ञेय - "पलकों का कंपना" आँगन के पार द्वार - पृ. 22
4. डॉ. रामसजन पाण्डेय - विविध साहित्यिक वाद - पृ. 108

का पानी पिया था और जनसेवा भी की थी । उससे भी श्रेष्ठ एवं महान है एक एक क्षण को भोगना । क्षण की वकालत करते हुए अज्ञेय कहते हैं कि -

एक क्षण क्षण में प्रवाहमान
व्याप्त संपूर्णता ।
इससे कदापि बडा नहीं था महाम्बुधि जो
पिया था अगस्त्य ने
एक क्षण । होने का
अस्तित्व का अजस्र अद्वितीय क्षण ।
होने के सत्य का
साक्षात् के क्षण का
क्षण के अखण्ड पारावार का
आज हम आचमन करते हैं ।[1]

क्षण की अद्वितीयता की स्वीकृति और उसको जीना क्षणवादियों की अहमियत है । इस पर प्रकाश डालते हुए अज्ञेय ने यों लिखा है -

हमें किसी कल्पित अजरता का मोह नहीं ।
आज के विविक्त अद्वितीय इस क्षण को
पूरा हम जी लें, पी लें, आत्मसात् कर लें -
उसकी विविक्त अद्वितीयता
आपको, कमपि को, क ख ग को
अपनी सी पहचनवा सकें,
रसमय करके दिखा सकें -
शाश्वत हमारे लिए वही है ।[2]

---

1. अज्ञेय - "नयी कविता एक संभाव्य भूमिका" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 44
2. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 44

अज्ञेय की दृष्टि में प्रत्येक पल को बाँधना मुश्किल है । वह निरन्तर प्रवाहमान है । इसलिए वे क्षण के पारावार को आचमन करना चाहते हैं । क्षण के अमरत्व पर उनका अलग दृष्टिकोण है -

नहीं बाँधकर रखा जाता
छोटा सा पल छिन
चढ डाले पर चली जा रही
काल की दुलहिन[1]

अज्ञेय ने "सर्जना के क्षण" में क्षण के महत्व पर अपना विचार व्यक्त किया है । एक क्षण की अनुभूति उनकी दृष्टि में श्रेयस्कर है -

एक क्षण -भर और
रहने दो मुझे अभिभूत
x x x x
एक क्षण भर और
लम्बे सर्जना के क्षण कभी कभी हो नहीं सकते ।
बूँद स्वाती की भले हो
बेधती है मर्म सीपी का उसी निर्मम त्वरा से
वज्र जिससे फोडता चट्टान को
भले ही फिर व्यथा के तम में
बरस पर बरस बीतें
एक मुक्ता-रूप को पकते ।[2]

---

1. अज्ञेय - इत्यलम् - पृ. 96
2. अज्ञेय - "सर्जना के क्षण" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 101

अज्ञेय ने क्षणों के नैसर्गिक भोग की भी स्वीकृति दी है । जीवन में जो अनुभूति व्यक्ति को सुख या तृप्ति प्रदान करती है वह महत्वपूर्ण है । क्षण के जीवन में लीन होकर प्रणय भोग का आनन्द लूटनेवाले विहग प्रणयी-युग्म से कवि की सलाह निम्न पंक्तियों में है -

खग युगल करो सम्पन्न प्रणय
क्षण के जीवन में हो तन्मय[1]

क्षणवादी विचारधारा के अनुसार हर क्षण अमूल्य है । कवि ने प्रश्नवाचक मुद्रा में इसका अंकन किया है -

यह क्षण   यह चित्र
दरिद्र ?
अ-मूल ? अमोल ?
विलीयमान ? चिर ?[2]

जब व्यक्ति अपने अस्तित्व को खो देता है तब वह क्षणों के महत्व को स्वीकार करने को विवश हो जाता है । जैसे कहा गया कि विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं ने मध्यवर्ग के कवियों को अस्तित्वहीन होने का अहसास कराया था । फलत: कवि व्यक्ति के अस्तित्व और क्षण के महत्व को स्वीकार करने के लिए मजबूर हो गया । अज्ञेय ने अपनी विवशता को निम्न पंक्तियों में अंकित किया है -

अवतंसों का वर्ग हमारा
    खड्गधार भी न्यायकार भी ।
हम ने क्षुद्र तुच्छतम जन से
अनायास ही बाँट लिया

---

1. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 96

2. अज्ञेय - अरी ओ करुणाप्रभामय - पृ. 134

श्रम भार भी सुख-भार भी ।
बल्कि बढ़ गये हैं आगे भी -
हम निश्चय ही हैं उदार भी ।

टीका {यद्यपि भाष्यकार है दुर्मुख}
हम लोगों का एक मात्र श्रम है - सुरति-श्रम,
उस अन्त्यज का एक मात्र सुख है - मैथुन सुख ।[1]

अज्ञेय ने जीवन के विशिष्ट क्षणों की अनुभूतियों को व्यंजित करने का प्रयास किया जो मामूली क्षणों से भिन्न है । उनकी मान्यता है कि ऐसे क्षणों में हमारा मनोभाव जैसा होता है वैसा भविष्य में कदापि नहीं होता । झील के किनारे पर अज्ञेय को जो अनुभूति हुई उसका चित्रण यों किया गया है -

झील का निर्जन किनारा
और वह सहसा छाये सन्नाटे का
एक क्षण हमारा ।
वैसा सूर्यास्त फिर नहीं दिखा ।[2]

कवि ने क्षण की अनुभूतियों को इतना महत्त्व दिया कि जीवन के प्रत्येक क्षण को वे अमोघ और अनश्वर समझते हैं । जो क्षण बीत गये उन क्षणों पर कवि के मन में जो भाव उमड़ पड़ता है उसपर कवि ने लिखा है -

यह दुःसह सुख क्षण
मिला अचानक हमें

---

1. अज्ञेय - "वर्ग भावना - सटीक" तारसप्तक - पृ. 296
2. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार - पृ. 21

अतर्कित
तभी गया तो छोड़ गया
यह दर्द अकथ्य अकल्पित ।[1]

अज्ञेय एक क्षण की अनुभूति तक को जीने के लिए छटपटाते है और उसे शब्दों में बाँधना चाहता है । कवि उस क्षण की तलाश में है जिसने उन्हें जगाया है -

बरसों की मेरी नींद रही ।
बह गया समय की धारा में जो ।
कौन मूर्ख उसको वापस माँगे ।
मैं आज जाग कर खोज रहा हूँ
वह क्षण जिस में मैं जागा हूँ ।[2]

कवि क्षण की अनुभूतियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं । क्षण का जीवन उनकी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है । यानी वे उस क्षण का स्पर्श पाकर आलोकित एवं विभोर हो जाना चाहते हैं ।

अन्य प्रयोगवादी कवियों में भी क्षणवादी प्रवृत्तियों की झाँकी मिलती है । पर अज्ञेय की तुलना में क्षण की महत्ता पर उनका दृष्टिकोण कमोबेश भिन्न है । अपने रिक्त मन में जो व्यथा है उसे क्षण भर ही दूर करने का निवेदन "मेघमल्लार" कविता में हुआ है -

कुछ रिक्त हो चली दुनिया मेरे मन-सी
कुछ रिक्त हो चली जगती इस जीवन-सी

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 80
2. वही - पृ. 148

तुम निज आर्द्रा घिर घिर कर क्षण भर छा दो -
सन्तुष्ट हो चले हिय की प्यासी हँसी ।[1]

क्षण क्षण में जो चाह प्रेमी-प्रेमिका के मन में होती है उसका सही चित्रण कवि ने निम्न पंक्तियों में किया है -

क्या पता कहाँ आना जाना क्या कूलों की परवाह, पिया ।
इस क्षण दो ओठों में गाना दो ओठों में हो चाह, पिया ।
वह हिलराता मदमाता हो, मौजें लेता दरियाव, पिया ।
मेघों में मूँक ढाँके मयंक, सुधि मन में गिनती घाव पिया ।[2]

भारतभूषण अग्रवाल ने भी क्षण की अनुभूतियों पर अपना विचार प्रकट किया है । "बिदा वेला" में अपनी प्रेयसी के साथ जो बातचीत होती है उसका स्वाभाविक चित्रण प्रस्तुत करके क्षण का सुख खोजनेवाले कवि का रूप उभर आता है -

पाया स्नेह, पा सकीं न पर तुम अभी बिदा-रीति का ज्ञान
पगली । बिछोह की वेला में बिन माँगे ही प्रीतिका पान
दो मुझे । कहो इस अन्तिम पल में एक बार "प्रियतम" धीमे
पूछो :"कब लौटोगे, वसन्त में ? वर्षा में ? शरद-श्री में ?
शीत की शर्वरी में ? सरले । मत रह जाओ नतमुख-उदास
लाज से दबी । कल जब यह पल होगा अतीत, तब अनायास
मुखरित होगी यह नीरवता । बन व्यथा, वियोगी प्राणों में
तब तुम सोचोगी बार बार: "क्यों आँसू में, मुस्कानों में,
सुख-दुख की उस अद्वितीय घडी को किया न मैं ने अमर ? प्रिय ।[3]

---

1. प्रभाकर माचवे - "मेघमल्लार" तारसप्तक - पृ. 190
2. प्रभाकर माचवे - "काशी के घाट पर" तारसप्तक - पृ. 209
3. भारतभूषण अग्रवाल - "बिदा वेला" तारसप्तक - पृ. 107

मुक्तिबोध ने क्षण के महत्व को एक नया आयाम दिया है । किसी की मृत्यु के बाद घर का वातावरण बदल जाता है । कवि की दृष्टि में क्षण भर के दुख से विचलित न होकर स्वतन्त्र रहना ही बेहतर है वह क्षण भी महान है -

"यह सब क्षणिक, क्षणिक जीवन है, मानव जीवन है क्षणभंगुर",
ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदन से हो आतुर
जीवन चिन्तन में निर्णय पर अकस्मात् मत आ, ओ निर्मल ।
इस बीभत्स प्रसंग में रहो तुम अत्यन्त स्वतंत्र निराकुल,
भ्रष्ट न होने दो युग युग की सतत साधना महाराधना,
इस क्षण भर के दुःख भार से, रहो अविचलित रहो अचंचल ।[1]

"तीसरा सप्तक" के कवि प्रयागनारायण त्रिपाठी ने भी क्षण के महत्व पर लिखा है । "अंतिम दो क्षण" कविता में मिलन की लालसा और मिलन के प्रति कृतज्ञता की अनुभूति से झंकृत हृदय का समर्पण भाव भी मिलता है -

दो क्षण बैठे - अन्तिम दो क्षण
चिर कृतज्ञ क्षण के प्रति
अपने प्रति
दूर क्षितिज की ओर -
दृष्टियाँ चार
देखती रहें
देखती रहें
    समर्पित ।[2]

---

1. मुक्तिबोध - "मृत्यु और कवि" तारसप्तक - पृ. 56
2. प्रयागनारायण त्रिपाठी - "अंतिम दो क्षण" तीसरा सप्तक - पृ. 14

क्षणवाद के संबन्ध में धर्मवीर भारती का मत उल्लेखनीय है । उनका कथन है कि सृजन का क्षण विघटन से विशिष्ट है । वस्तुतः मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा हो सके, यही हमारा दायित्व है ।[1]

उन्होंने "कनुप्रिया" में क्षणवादी व्यक्तिवादी विस्फोट की अभिव्यक्ति की है -

तुम्हारी संपूर्ण सृष्टि का अर्थ है मात्र तुम्हारी इच्छा
और तुम्हारी संपूर्ण इच्छा का अर्थ है केवल मैं !
केवल मैं !! केवल मैं !![2]

संक्षेप में प्रयोगवादी कविता में अभिव्यक्त क्षणवाद के विश्लेषण से यह बात विदित हो जाती है कि प्रत्येक क्षण जीवन में सार्थकता प्रदान करता है । एक क्षण का महत्त्व दूसरे क्षण में नहीं होता । प्रत्येक क्षण अलग अस्तित्व ग्रहण करके व्यक्ति की ज़िन्दगी को सुन्दर बनाने में सहयोग देता है और हर क्षण व्यक्ति के जीने और अस्तित्व में रहने का ज़रिया भी है । इसी बात को प्रयोगवादी कवियों ने बुलन्द करने का प्रयास किया है ।

बौद्धिकता

कविता की रागात्मक वृत्तियों की तुलना में प्रयोगवादी कवियों

---

1. रमाशंकर तिवारी - प्रयोगवादी काव्यधारा - पृ. 47। उद्धृत
2. धर्मवीर भारती - कनुप्रिया - पृ. 44

ने बौद्धिकता को प्रश्रय दिया है ।[1] विज्ञान के बढ़ते प्रभाव ने कवियों को बौद्धिक बनाया था । वैज्ञानिक प्रभाव और युद्ध की विभीषिकाओं से त्रस्त कवि भावना के स्तर पर ही नहीं बुद्धि के स्तर पर भी काव्यरचना करने के लिए उद्विग्न हुए थे ।

प्रयोगवाद में यह दृष्टि निहित है कि बुद्धि के अभाव में कविता युग की मेधा को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम नहीं होगी । इसका समर्थन करते हुए शंभुनाथ सिंह का कथन है कि, "काव्य में बौद्धिकता अग्राह्य या अछूत वस्तु नहीं है और न भावनात्मकता उसका अनिवार्य तत्व है । कभी कभी विशुद्ध बौद्धिक कविताएँ भी उच्चकोटि की होती हैं ।[2] "हरी घास पर क्षण भर" काव्य में अज्ञेय द्वारा प्रेम का जो चित्र उभारा गया है उसमें रागात्मकता की बजाय बौद्धिकता का समावेश हुआ है । फिर भी कवित्व में कमी नहीं आई है । प्रस्तुत कविता की निम्न पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं -

आओ बैठो
क्षण भर तुम्हें निहारूँ
x x x
झिझक न हो कि निरखना
दबी वासना की विकृति है ।
चलो उठे अब,
अब तक हम थे बन्धु
सैर को आये -

---

1. डॉ. रामभजन पाण्डेय - विविध साहित्यिक वाद - पृ. 18।
2. प्रयोगवाद और नई कविता - पृ. 89

और रहे बैठे तो
लोग कहेंगे
धुँधले में दुबके दो प्रेमी बैठे हैं ।
वह हम हो भी
तो यह हरी घास ही जाने ।[1]

अज्ञेय ने "क्योंकि तुम हो" कविता में अपनी रहस्यवादी भावना को बौद्धिकता के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया है -

तुम तुम हो; मैं - क्या हूँ ?
ऊँची उडान, छोटे कृतित्व की लम्बी परंपरा हूँ,
पर कवि हूँ, स्रष्टा, द्रष्टा, दाता
जो पाता
हूँ अपने को भट्ठी कर उसे गलाता-चमकाता हूँ ।[2]

बौद्धिक चेतना का परिचय अक्सर प्रतीकों और उपमानों के माध्यम से भी किया जाता है । अज्ञेय ने बाजरे की कलगी से प्रेयसी के सौंदर्य की तुलना की है । "कलगी बाजरे की" कविता का एक अंश यों है -

अगर मैं तुमको
ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
यह अरद के भोर की नीहार न्हायी कुंई,
टटकी कली चम्पे की
वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है ।

---

1. अज्ञेय - "हरी घास पर क्षण भी" पूर्वा - पृ. 246
2. अज्ञेय - "क्योंकि तुम हो" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 46

बल्कि केवल यही
ये अपमान मैले हो गये हैं ।[1]

अज्ञेय की "बावरा अहेरी" में भी बौद्धिकता का प्रभाव है । अहेरी का चित्रण करने के लिए कवि ने जिन शब्दों का प्रयोग किया है उनमें बौद्धिकता की अधिकता के कारण क्लिष्टता और दुरूहता भी दर्शनीय हैं अहेरी सूरज का प्रतीकात्मक शब्द है । अज्ञेय ने इस कविता में वैज्ञानिक शब्दों का भी प्रयोग किया है -

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
        लाल लाल कनियाँ
×   ×   ×   ×
छोटी छोटी चिड़ियाँ
मँझोले परेवे
बड़े बड़े पंखी
डैनोंवाले, डीलवाले,
डौल का बेडौल
        उड़ने जहाज़
कलस-तिसूल वाले मन्दिर शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी गोल धुस्सोंवाली
उपयोग-सुन्दरी
बेपनाह काया को
गोधूली की धूल को, मोटरों के धुएँ को भी
पार्क के किनारे पुष्पिपताग्र कर्णिकार की
                आलोक-खची तन्वि रूपरेखा को

---

1. अज्ञेय - "कलगी बाजरे की" सुनहले शैवाल - पृ. 60

और दूर कचरा जलानेवाली कल की उद्दंड चिमनियों को, जो
धुआँ यों उगलती हैं, मानो उसी मात्र से अहेरी को हरा देंगी ।[1]

अज्ञेय ने "मैं वहाँ हूँ" कविता में भी बौद्धिकता का परिचय दिया है । कवि अपने व्यक्तित्व को व्यापकता को दर्शाने के लिए प्रत्येक मानव के पास जाना और अपनी उपस्थिति से उसी के साथ रहना चाहते हैं । यानी समाज का चित्रण करके अज्ञेय ने अपने विचारों का स्पष्टीकरण इस कविता के माध्यम से किया है -

दूर दूर दूर...... मैं वहाँ हूँ ।
यह नहीं कि मैं भागता हूँ
मैं सेतु हूँ -
x x x x
यह जो दूसरों का उतारन फींचती है,
यह जो रद्दी बटोरता है
यह जो पापड़ बेलता है, बीड़ी लपेटता है, वर्क कूटता है,
धौंकनी फूँकता है, कलई गलाता है, रेढ़ी ठेलता है,
चौक लीपता है, बासन माँजता है, ईंटें उछालता है,
रूई धुनता है, गारा सानता है, खटिया बुनता है,
मशक से सड़क सींचता है,
रिक्शा में अपना प्रतिरूप लादे खींचता है,
जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है -
पीड़ित श्रमरत मानव
कमकर, श्रमकर, शिल्पी, स्रष्टा
उसकी मैं कथा हूँ ।[2]

---

1. अज्ञेय - "बावरा अहेरी" आधुनिक लोकप्रिय हिन्दी कवि -10 - पृ. 50
2. अज्ञेय - "मैं वहाँ हूँ" तारसप्तक - पृ. 314-315

अज्ञेय की कई कविताओं में बौद्धिकता को प्रमुखता दी गयी है। जितना तुम्हारा सच है, सत्य तो बहुत मिले, क्योंकि तुम हो, हमने पौधे से कहा, मुझे तीन शब्द दो, आखेटक, मैं मेरा तू तेरा शीर्षक कविताएँ बौद्धिकता से लैस है।

प्रयोगवादी कवियों ने, जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया, नवीनता की खोज में बौद्धिक तत्व का समावेश करते हुए रागतत्व की एक हद तक उपेक्षा की है। फलतः ऐसी कविताओं में मन को स्पर्श करने की शक्ति का अभाव रहा है। कविता सिर्फ बौद्धिक रह गई है।

अज्ञेय की बौद्धिकता का एक अच्छा दृष्टांत "हमने पौधे से कहा" में मिलता है। इसमें कोई काल्पनिकता या रागात्मिकता नहीं है। बल्कि शब्दों के ऐसे प्रयोग से काव्य में सहजता या सरलता की बजाय एक प्रकार की दुरूहता का परिचय मिलता है -

हमने पौधे से कहा
मित्र हमें फूल दो।
उसकी फुनगी में चिनगियाँ दो फूटीं
डाली से उसने फुलझड़ी छोड़ दी
हम मुग्ध देखते रहे
कि कब कली फूटे -
कि काय श्री उसकी समीरण में झूम गयी,
हमें जान पड़ा, कहीं गन्ध की फुहारे झर रही हैं

और देखा सहसा
लच्छा सा डोंडियों का
गुच्छा एक फूल का ।
[illegible] ।[1]

बौद्धिकता का एक सशक्त चित्रण "आखेटक" कविता में मिलता है । शिकारी के कई बार बाण छोडने पर भी कोई जीव नीचे नहीं गिरता । मामूली बात होने पर भी कवि ने इसका वर्णन एक विशिष्ट ढंग से किया है -

कभी कभी पर
निरुद्देश्य निर्लक्ष्य
तीर से रहित धनुष की
प्रत्यंचा को
देता हूँ टंकार अनमना
मेरे हाथ कुछ नहीं आता । दूर कहीं पर,
हाय मर्म में कोई बिंध जाता है ।[2]

"मैं-मेरा तू-तेरा" कविता में कवि ने "मैं" और "तू" शब्द को लेकर अपना विचार प्रस्तुत किया है जिसमें ठोस बौद्धिकता ही उभर आयी है -

जो मेरा है
वह बार-बार मुखरित होता है
पर जो मैं हूँ
उसे नहीं वाणी दे पाता ।
x x x x
जो मैं हूँ

---

1. सं. विद्यानिवास मिश्र - आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-10 अज्ञेय - पृ. 61
2. अज्ञेय - "आखेटक" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 97

वह एक पुँज है दुर्दम आकांक्षा का
पर उसके बल पर
जो मेरा है मैं बार-बार देता हूँ ।
जो तू है
वह अनासक्ति पारमिता
पर उसके वातायन से
जो तेरा है तू मुझ से
इससे, उससे, सबसे फिर-फिर भर-भर
स्मित, निर्विकल्प ले लेता है ।[1]

"इतिहास की हवा" में एकलव्य और द्रोणाचार्य को लेकर आधुनिकता का जाता पहनाया गया है । आज भी हमारे बीच इन दोनों के प्रतिरूप विद्यमान है । कवि ने निम्न पंक्तियों में इसका परामर्श किया है -

क्योंकि मैं झुंड के झुंड चिट्टे-चिट्टे गाले
वास्तव में हमारे उन किशोर शिक्षार्थी बालकों के
विश्वास भरे चमकते चेहरों की
सहसा विजडित हो गयी आँखें हैं
जिनके नैतिक मान हमने आधुनिकता के विस्फोट में उडा दिये
और जिनके शिक्षा-स्रोत हमने वंशातीत विषों से दूषित कर दिये हैं ।
क्या यह फूटा अणु
हमारा व्यक्तित्व है
हमारी आत्मा
हमारी इयत्ता है ?[2]

---

1. अज्ञेय - "मैं मेरा, तू तेरा" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 102
2. अज्ञेय - "इतिहास की हवा" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 33-34

मुक्तिबोध की रचनाओं में बौद्धिकता का काफी असर पड़ा है । "चाँद का मुँह टेढ़ा है" में कवि ने लिखा है -

असफलता का धूल-कचरा ओढ़े हूँ
इसलिए कि वह चक्करदार जीनों पर मिलती है
छल-छद्म धन की
किन्तु मैं सीधी सादी पटरी-पटरी दौड़ा हूँ
विष से अप्रसन्न हूँ
इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए
पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए ।[1]

"सृजन-क्षण" में मुक्तिबोध ने बौद्धिकता को जो परिचय दिया है उसमें रागात्मकता का बिलकुल अभाव है -

जो कि तुम्हारे गर्त बने हैं अधमता के,
उन पर लहराकर भरता मैं एक अवज्ञा ।
वही गंभीर अतल होते हैं,
वे ही सदा अमल होते हैं,
फिर जाती जिन पर वन्या-सी मेरी प्रज्ञा ।[2]

प्रयोगवादी कवियों ने, जैसे उपर्युक्त सूचित किया गया, नवीनता की खोज में बौद्धिक तत्व का समावेश करते हुए रागतत्व की एक हद तक उपेक्षा की है । फलत: ऐसी कविताओं में मन को स्पर्श करने की शक्ति का अभाव रहा है । कविता सिर्फ बौद्धिक रह गयी है । भारत भूषण अग्रवाल की कविताओं में भी बौद्धिकता का पुट है । जिन्दगी की तुलना अखबार से

---

1. मुक्तिबोध - "मैं तुम लोगों से दूर हूँ" चाँद का मुँह टेढ़ा है - पृ. 108
2. मुक्तिबोध - "सृजन क्षण" तारसप्तक - पृ. 63

करने की प्रवृत्ति कवि की निम्न पंक्तियों में मिलती है -

रोज़ सबेरे
मेरे लिए एक आश्चर्य लोक खोल देता है
अखबार ।.....
x x x
नहीं ऐसे काम नहीं चलेगा.....
ज़िन्दगी को अखबार बनाकर पढ़ते रहना ।
कोई न कोई बता ही देगा वह रास्ता ।
जिस पर घटनाएँ मिलती हैं ।[1]

कवि ने प्रकृति के उपमानों के माध्यम से ज़िन्दगी के पीड़ित दिनों का वर्णन किया है । उसमें भी बौद्धिकता का अंश है -

सब ओर आज गतिहीन शान्ति, निष्प्राण मौन,
अस्वस्थ धरा, अवरुद्ध वायु, निस्तेज गगन
गँदला अशुद्ध जग का जीवन ।
जग की रग रग में जमा हुआ हेमन्त-शीत,
पतझार - पीत ।
पर भय क्या है । - अब देर नहीं
हम अग्निशिखा प्रज्वलित करेंगे
जिसके सम्मुख एक बार ही
गल-गल पिघल जायेंगे सारे हिम के प्रस्तर ।[2]

गिरिजाकुमार माथुर की कविताओं में भी बौद्धिकता की झलक मिलती है ।

---

1. भारत भूषण अग्रवाल - "अगति" एक उठा हुआ हाथ - पृ. 25-26
2. भारत भूषण अग्रवाल - "जीवनधारा" तारसप्तक - पृ. 93

कवि ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है इसलिए सहज ही उसमें बौद्धिकता आ गई है । उन्होंने अपनी अनुभूतियों का परिचय यों दिया है -

निर्जन दूरियों के
ठोस दर्पणों में चलते हुए
सहसा मेरी एक देह
तीन देह हो गयी
उग कर एक बिन्दु पर
तीन अजनबी साथ चलने लगे
अलग दिशाओं में
- और यह न ज्ञात हुआ
इनमें कौन मेरा है ।[1]

कवि ने दो छोटे पेड़ों की जगह बीच चमकते जल पर अपने विचारों को शब्दबद्ध करने के लिए बौद्धिकता का सहारा लिया है -

भीतर तमाशेबन्द बक्से का बायस्कोप
ढक्कनदार शीशों के मोखें सहसा खुल गये
धीरे धीरे घूमते खिलौनों - से दृश्य सभी
छोटे होते गये
मैं जिसका दर्शक भी हूँ
और तमाशा भी
सिमट गयी अपार झील
दो छोटे पेड़ों की जगह बीच
चमक गया पानी
अपना अनुपात सभी टूट गया ।[2]

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - "देह की दूरियाँ" तारसप्तक - पृ. 160
2. गिरिजाकुमार माथुर - "बरकुल" तारसप्तक - पृ. 161

नरेश कुमार मेहता की "समयदेवता" कविता में वैज्ञानिक परिवेश के कारण अपने आप बौद्धिकता का समावेश हुआ है -

वह सृष्टि-श्री मनुज आज विज्ञान कब्र में मरा पड़ा है ।
दौड़ रही है गन्धक और फासफोरस की पीली लपटें,
जिस में उस जापान देश का सदियों का संगीत जल गया ।
महल फैक्टरी सभी बुझ गये ।
झुलसी हुई पलक नारी की, मेघ भरी वे भावहीन जापानी आँखें,
शिशु के हाथों में हड्डी की गुड़िया ।[1]

प्रभाकर माचवे ने अखबार बेचनेवाले व्यक्ति का चित्रण करके यही समझाया है कि उसे दुनिया की किसी भी घटना की कोई परवाह नहीं है । कविता के आखिरी भाग में अखबार को एक मशीन के रूप में चित्रित किया गया है । इसमें बौद्धिकता का समावेश भी हुआ है -

वह एक
मैला-सा कुर्ता पहने बेच रहा है अखबार
"अरजुन, स्वराज, जन्मभूमि, आज, अधिकार" -
दो पैसे या कि चार-चार ।
× × × × × ×
वह एक मशीन
जिसमें इस दुनिया के गोले के प्रत्येक
कोने से आती जो खबरें हैं, रंगीन श्री-हीन,
सब बनके अक्षर ढल जाती है, छप कर के जो निकलीं
लक्ष लक्ष चक्षुओं से निगली गयीं वे और
बिक भी गयीं वे गली गली में । कि चौबीस

---

1. नरेश मेहता - "समय देवता" दूसरा सप्तक - पृ. 123-124

घण्टों के बाद पुनः बारी । यह खड़-खड़-खड़
दैनिक की "रोटरी" की प्यास बड़ी संगीन
।
वह एक ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों ने युग के अनुकूल अपनी कविताओं में बौद्धिकता को समेटने की कोशिश की थी । लेकिन बौद्धिकता के प्रति अतिरंजित लगाव के कारण एक हद तक उनकी कविता में दुरूहता भी आई है । यह सही है कि काव्य में बुद्धि और भावना का संतुलन होना चाहिए । तब दुरूहता या अस्पष्टता का सवाल ही नहीं उठता । दरअसल प्रयोगवादी कविता इस बात का प्रमाण है कि काव्य में अतिशय बौद्धिकता त्याज्य ही है ।

निराशा, अनास्था, घुटन, कुंठा, पीडा और पराजय की भावना का चित्रण

अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव के कारण प्रयोगवादी कविता में अनास्था, कुंठा, घुटन, पीडा और पराजय भावना को हूबहू अभिव्यक्ति मिलती है । प्रयोगवादी काव्य काल के परिवेशगत असर भी तत्कालीन कवियों पर पडा था । जैसे पहले ही उल्लेखित है कि राजनीतिक सांस्कृतिक वैयक्तिक और सामाजिक क्षेत्र में टूटन और घुटन का माहौल था । औद्योगीकरण के हेतु पारिवारिक इकाइयाँ विच्छिन्न होने लगी थीं । सन् 1942 की क्रान्ति से जो जटिल समस्याएँ उद्भूत हुई थीं उनके कारण व्यक्ति एकदम

---

1. प्रभाकर माचवे - "वह एक" तारसप्तक - पृ. 203

निराश एवं कुंठित हो गया था । असुरक्षा की भावना ने व्यक्तिवादी अभिव्यक्ति को तीव्र कर दिया था । इसमें दर्द, घुटन, निराशा, भय और आकांक्षा की प्रधानता थी । अज्ञेय ने अपने मन की निराशा को यों अभिव्यक्त किया है -

एक तनी हुई रस्सी है जिस पर मैं नाचता हूँ ।
जिस तनी हुई रस्सी पर मैं नाचता हूँ
वह दो खम्भों के बीच है ।
रस्सी पर जो मैं नाचता हूँ
वह एक खम्भे से दूसरे खम्भे तक का नाच है
x x x x
मैं केवल उस खम्भे से इस खम्भे तक दौड़ता हूँ
कि इस या उस खम्भे से रस्सी खोल दूँ
कि तनाव चुके और ढील में मुझे छुट्टी हो जाये -
पर तनाव ढीलता नहीं ।[1]

मुक्तिबोध की "नूतन अहं" में घोर निराशा और घुटन द्रष्टव्य हैं -

है खत्म हो चुका स्नेह कोष सब तेरा
जो रखता था मन में कुछ गीलापन
और रिक्त हो चुका सर्व रोष
जो चिर विरोध में रखता था आत्मा में गर्मी सहज भव्यता
मधुर आत्मविश्वास ।[2]

---

1. अज्ञेय - "नाच" आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि-10 - अज्ञेय - पृ. 122
2. मुक्तिबोध - "नूतन अहं" - तारसप्तक - पृ. 57

"विहार" में भी उन्होंने अपने निराश मन के उद्‌गारों को व्यक्त किया है -

दिन के बुखार
रात्रि की मृत्यु
के बाद हृदय दुःख का नाटक,
रात्रि के शून्य
दो देह युक्त -
दो रिक्त प्राण व्यंग्य में गर्क ।[1]

नेमिचन्द्र जैन की "व्यर्थ" शीर्षक कविता में निराशा का चित्रण हुआ है । अपने कुंठित एवं तिरस्कृत व्यक्तित्व से कवि विवश एवं निराश हो गये हैं -

किन्तु पथ दर्शक,
विवश मैं हार जाता हूँ भयंकर मौन से,
बेमाप अपने प्राण में छाये हुए एकान्त से,
सतत् निर्वासित हृदय से ।
तिरस्कृत व्यक्तित्व के
थोथे असंगत दर्प ने मन को
सहज अनजान स्वाभाविक अनावृत धार को
कर दिया है कुंठित
सहज अंगारे
कि मानों दब गये हो बुझे से
जैसे कि ठंडी राख से ।[2]

धर्मवीर भारती की कविताओं में भी निराश व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया गया है । जो निराश है वह जीवन का कोई लक्ष्य नहीं देखता । कवि ने अपनी निराशा को ही यहाँ वाणी दी है -

---

1. मुक्तिबोध - "विहार" तारसप्तक - पृ. 60
2. नेमिचन्द्र जैन - "व्यर्थ" तारसप्तक - पृ. 28

मैं बैठा हूँ
यह शाम मुझे अपनी मुरदार उँगलियों से छू लेती है
x x x x
सब अर्थ और उत्साह छिन गया जीवन का,
जैसे जीने के पीछे कोई लक्ष्य नहीं,
दिल का धड़कन भी इतनी बेमानी,
जितनी
वह टिक टिक करती हुई घड़ी
जिसकी दोनों की दोनों सुइयाँ टूटी हो ।[1]

प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में अनास्था और संशय के स्वर भी बुलन्द हैं । अज्ञेय, मुक्तिबोध, प्रभाकर माचवे आदि सभी कवियों ने इन भावों की अभिव्यक्ति दी है । अनास्था के कारण अज्ञेय ने राधा और कृष्ण के चिर प्रतिष्ठित प्यार को प्रश्नों के कटघरे में रखकर उसपर सन्देह किया है -

कन्हाई ने प्यार किया कितनी गोपियों को कितनी बार ।
पर उँडेलते रहे अपना सारा दुलार
उस एक रूप पर जिसे कभी पाया नहीं -
जो कभी हाथ आया नहीं ।
कभी किसी प्रेयसी में उसी को पा लिया होता
तो दोबारा किसी को प्यार क्यों किया होता ?[2]

---

1. धर्मवीर भारती - "जाड़े की शाम" दूसरा सप्तक - पृ. 183
2. अज्ञेय - "कन्हाई ने प्यार किया" सागर मुद्रा - पृ.

"मैं वहाँ हूँ" कविता में अज्ञेय ने मानव की विविध झाँकियों को हमारे सम्मुख रखा है । कवि की दृष्टि में वही मानव पिसता है जिसकी कोई आस्था नहीं है -

जो भी जहाँ भी पिसता है
पर हारता नहीं, न मरता है -
पीड़ित श्रमरत मानव
अविजित दुर्जेय मानव
कमकर श्रमकर शिल्पी, सृष्टा
उसकी मैं कथा हूँ ।[1]

मुक्तिबोध ने भी अनास्था की अभिव्यक्ति दी है । कवि की जीवन और उसके विविध आयामों के प्रति अनास्था की दृष्टि है । निम्न पंक्तियों में इस दृष्टिकोण का निखरा चित्र मिलता है -

अर्थ खोजी प्राण ये उद्दाम है,
अर्थ क्या ? यह प्रश्न जीवन का अमर ।
क्या तृषा मेरी बुझेगी इस तरह ?
अर्थ क्या ? ललकार मेरी है प्रखर ।[2]

प्रभाकर माचवे की "बीसवीं सदी" में कवि ने युगीन परिस्थितियों पर अपना विचार अभिव्यक्त करते हुए पूँजीवादी सभ्यता पर अनास्था प्रकट की है -

बीसवीं सदी ने यही दिया ?
मानव को मानव का भक्षण
मानव को निज संरक्षण का

---

1. अज्ञेय - "मैं वहाँ हूँ" तारसप्तक - पृ. 315
2. मुक्तिबोध - "अशक्त" तारसप्तक - पृ. 53

परवाना सब को बाँट दिया -
जीवन संघर्ष बढ़ा यों तक
उस हाथ दिया, इस हाथ लिया ।
देखा न पुण्य अथवा पातक
जिसने मारा, बस वही जिया ।[1]

भारत भूषण अग्रवाल ने युगीन विषमताओं से उत्पन्न अनास्था के कारण ईश्वर के प्रति विद्रोह प्रकट किया है । पूजा पर उनकी नई व्याख्या इस प्रकार है -

मैं छोड़कर पूजा
क्योंकि पूजा है पराजय का विनत स्वीकार
बाँधकर मुट्ठी तुझे ललकारता हूँ
सुन रही है तू ?
मैं खड़ा तुम को यहाँ ललकारता हूँ ।[2]

"परिवेश हम तुम" में कुंवर नारायण ने अपने आसपास की घटनाओं से भयभीत होकर अनास्था के स्वर को यों मुखरित कर दिया है -

आसपास की दुनिया को चिल्लाता छोड़
अगर चुप हो जाऊँ, डूबा रहूँ या डूब जाऊँ
तो मुझे माफ कर देना मेरी आरामदेह चीज़ों
मुझे डर है कि शायद मैं तुम से भी ऊब जाऊँ ।[3]

---

1. प्रभाकर माचवे - "बीसवीं सदी" तारसप्तक - पृ. 215
2. श्रीराम सजन - विविध साहित्यिक वाद - पृ. 103 से उद्धृत
3. कुँवर नारायण - क्षतिपूर्ति परिवेश हम तुम - पृ. 41

वेदना और संकट की मानसिकता में प्रयोगवादी कवियों ने अपने मन की पीडा और वेदना को कविताओं के ज़रिये बुलन्द करने का ज़्यादातर प्रयास किया हैं । अज्ञेय ने "चेहरा उदास" कविता में वेदना की अभिव्यक्ति दी है -

किन्तु मेरी स्मृति के
ओर-छोर मुक्त, गतियुक्त - से गंगन में
थम गया, जम गया वह स्थिर नेत्रयुक्त चेहरा उदास -
आँखों में सुलाये हुए तडपती बिजुली -
और आर्द्र वेदना के धन छाये आस-पास ।[1]

अज्ञेय के लिए अपनी वेदना माध्यम है । दुःख उन्हें सब को मुक्त रखने की शिक्षा देता है -

दुख सबको माँजता है
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु
जिसको माँजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे ।[2]

मुक्तिबोध के लिए वेदना चक्करदार सीढ़ियों पर चढ़ने के समान है -

और जब
मेरा सिर दुखने लगता है,
धुँधले-धुँधले अकेले में, आलोचना-शील
अपने में से उठे धुएँ की ही चक्करदार
सीढ़ियों पर चढ़ने लगता हूँ ।[3]

---

1. अज्ञेय - "चेहरा उदास" तारसप्तक - पृ. 298-299
2. अज्ञेय - "हरी घास पर क्षण भर" - पृ. 55
3. मुक्तिबोध - "एक आत्मवक्तव्य" तारसप्तक - पृ. 77

प्रयोगवादी कवियों ने पराजय के स्वर की भी अभिव्यक्ति दी है। अज्ञेय की कविताओं में कई बार पराजय की विनम्र स्वीकृति हुई है -

नहीं मुझको नहीं अपने दर्द का अभिमान
मानता हूँ मैं पराजय है तुम्हारी याद [1]

पराजय के स्वर अज्ञेय की निम्न लिखित पंक्तियों में भी उन्मीलित हुए हैं -

एक दिन जब
हाय ! पहली बार !
जानूँगा कि जीवन
जो कभी हारा नहीं था, हारता ही किसी से जो नहीं
अपने से चला अब हार
एक दिन
उस दिन
जिसे अपनी पराजय भी
दे सकूँगा समुद, निस्संकोच
उसी को
आज
अपना गीत देता हूँ। [2]

विघटित परिस्थितियों में एकाकी और पराजित व्यक्ति का चित्र धर्मवीर भारती ने हमारे सम्मुख यों रखा है -

ऐसा लगता आज कि मेरा सारा जीवन नष्ट,
ऐसा लगता आज कि मेरी सभी साधना भ्रष्ट
मैं ने हरदम घोटा, अपने सपनों का दम। [3]

---

1. अज्ञेय - "हरी घास पर क्षण भर" - पृ. 17
2. अज्ञेय - "एक दिन जब" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 12-13
3. धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा - पृ. 61

"अन्धा युग" में पराजय और बेबसी का चित्र बेहद सघन और तीव्र है -

हम सब के मन में गहरा उतर गया है, युग अँधियारा
अश्वत्थामा है संजय है
है दासवृत्ति उन दोनों वृद्ध प्रहरियों को
आशा संशय, लज्जाजनक पराजय है ।[1]

प्रयोगवादी कविता में पराजय के चित्रण के साथ पराजय की स्वीकृति का चित्रण भी मिलता है जो उनकी अहमियत की पहचान का सबूत है -

मैं जमकर लोहा बन जाऊँ
हार मान लूँ
यही शर्त ठंडे लोहे की[2]

लेकिन नेमिचन्द्र जैन की "व्यर्थ" शीर्षक कविता में पराजय का एक अलग स्वर द्रष्टव्य है -

किन्तु मैं हारा नहीं हूँ
फड़कती हैं अभी बाँहें
कि अपने मार्ग के अवरोध सारे तोड़ दूँ
किन्तु पथ प्रदर्शक
विवश मैं हार जाता हूँ भयंकर मौन से
बेमाप अपने प्राण में छाये हुए एकान्त से ।[3]

प्रयोगवादी कवियों पर यौन वर्जनाओं से संबद्ध कुण्ठा, अश्लीलता, और कुरूपता की प्रवृत्तियाँ भी हावी रही थीं । प्रसिद्ध पश्चिमी मनोवैज्ञानिक

---

1. धर्मवीर भारती - अन्धा युग - पृ. 130
2. धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा - पृ. 61
3. नेमिचन्द्र जैन - "व्यर्थ" तारसप्तक - पृ. 28

फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत का प्रभाव इन पर पडा है ।[1] इस सिद्धांत के अनुसार कामवृत्ति जीवन की सबसे बडी प्रेरक शक्ति है । अज्ञेय ने भी अपने वक्तव्य में मानव को यौन वर्जनाओं का पुंज माना है ।[2] प्रयोगवाद में भी व्यक्ति मानव की उलझी हुई यानी दमित वासनाओं का चित्रण अंकित हुआ है । यान्त्रिक सभ्यता में व्यक्ति कभी अकेला हो जाता है और उसके मन में अनेक प्रकार की कुंठित मनोवृत्तियाँ उद्भुत होती हैं । कुण्ठायें कभी कभी स्वप्नादि प्रतीकों के माध्यम से या नग्न या अश्लील रूप में व्यक्त कर दी जाती है । पहली स्थिति में व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है और दूसरी स्थिति तो पशुवत् आचरण के लिए प्रेरणा देती है ।

अज्ञेय की कविताओं में वैयक्तिक निराशा, घुटन आदि से उत्पन्न कुण्ठा की अभिव्यक्ति तीव्रतर हुई है । निम्न पंक्तियों में उन्होंने कुण्ठा का वास्तविक चित्र उतारा है -

आह मेरा श्वास है उत्तप्त -
धमनियों में उमड आयी है लहू की धार -
प्यार है अभिशप्त -
तुम कहाँ हो नारि ?[3]

"सावन मेघ" में यौन कुण्ठाओं की यथार्थ प्रतीती से जन्य वर्जनाओं की अभिव्यक्ति अज्ञेय ने की है । कुण्ठा का इतना प्रखर वर्णन अन्य कवियों में नहीं है -

जबकि सहसा तडित् के आघात से घिर कर
फूट निकला स्वर्ग से आलोक,
बाध्य देखा -

---

1. डॉ. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 77
2. अज्ञेय - तारसप्तक वक्तव्य - पृ. 278
3. अज्ञेय - "सावनमेघ" तारसप्तक - पृ. 282

स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक-सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य-सी निर्लज्ज, नंगी
औ' समर्पित ।[1]

अज्ञेय की मान्यता है कि दिवास्वप्नों को वे अपनाना नहीं चाहते लेकिन यथार्थ दर्शन, कुण्ठा उत्पन्न करता है । उनके अनुसार वास्तव की बीभत्सता की कसौटी पर चाँदनी खोटी दीखती है ।[2] उन्होंने ऐसा एक भदेस का चित्रण अपनी कविता में खींचा है -

वंचना है चांदनी सित
झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार
शिशिर की राका निशा की शांति है निस्सार ।
× × × × ×
बाँस की टूटी हुई टट्टी, लटकती
एक खम्भे से फटी सी ओढनी की चिन्दियाँ दो-चार ।
निकट-तर धसती हुई छत, आड निर्वेद
मूत्रसिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टांगों पर खडा नत-ग्रीव
धैर्यधन गदहा ।[3]

धर्मवीर भारती ने कुण्ठा की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है -

प्रात धूप की जरतारी ओढनी लपेटे
अभी अभी जागी

---

1. अज्ञेय - "सावनमेघ" तारसप्तक - पृ. 282-283
2. अज्ञेय - तारसप्तक वक्तव्य - पृ. 278
3. अज्ञेय - शिशिर की राकानिशा - पृ. 286

खुमार से भरी
नितांत कुमारी घाटी
इस कामातुर मेघ घूमके
औचक आलिंगन में पिसकर
रति श्रांता सी मलिन हो गई ।[1]

"जाडे की शाम" कविता में भी कुण्ठाग्रस्त मन का एक हल्का सा भाव भारती ने अंकित किया है -

जिस दिन तुमने मेरी साँसों को चूमा, ये
भगवान राम के मन्त्रबाण-सी
सात सितारों से जा कर टकरायी थी ;
पर आज पर-कटे तीरों-सी मेरी साँसें,
हर कदम कदम पर लक्ष्यभ्रष्ट हो जाती है ।
कुछ इतना थका पराजित सा लगता हूँ मैं ।[2]

अज्ञेय ने प्रकृति के माध्यम से अनेक यौन प्रतीकों से कुण्ठा ग्रस्त मन:स्थिति का संकेत किया है -

सो रहा है झोंप
अँधियाला नदी की जाँघ पर
डाह को सिहरी हुई यह चाँदनी
चोट-पैरों से उझककर झाँक जाती ।[3]

घुटन से पीडित कवि सीपियों पर उसका आरोप करते हुए अपने घुटन को ही

---

1. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष - पृ. 136-137
2. धर्मवीर भारती -"जाडे की शाम" दूसरा सप्तक - पृ. 184
3. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 23

स्पष्ट करते हैं -

सीपियाँ ।
ये शुभ्र नीलिम
दर्द की आँखें फटी-सी
जो कभी अब नहीं मोती दे सकेंगी ।
× × × ×
ये बन्द, बाहर खुरदुरी, छेदों भरी
हाय रे अपनी घुटन का ले सहारा मुक्त होना चाहता
निस्सीम सागर से -
उसी के उच्छिष्ट का ।[1]

प्रयोगवादी कवियों में शंका के स्वर कई बार हम सुनते हैं । अस्तित्वसंकट में पड़े हुए कवियों को अपने ही अस्तित्व पर संशय होना बिलकुल स्वाभाविक है । "पथ-हीन" कविता में यह स्वर मुखरित हुआ है -

कौन-सा पथ है ?
मार्ग में आकुल-अधीरातुर बटोही यों पुकारा
"कौन सा पथ है ?"[2]

नेमिचन्द्र जैन ने शंका को स्पष्ट करने के लिए "नागिन" शब्द का प्रयोग किया है -

शंका की नागिन बैठी है कुंडली मार ।
फुफकार रही है अपना विषधर फन पसार ।
बन्दिनी इडा है देख रही संत्रस्त विवश

---

1. अज्ञेय - "सागर तट की सीपियाँ" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 96
2. भारत भूषण अग्रवाल - "पथ हीन" तारसप्तक - पृ. 109

उठती है किस आदम की तीखी सी गुहार ।[1]

अज्ञेय की कविताओं में भी भविष्य के प्रति शंका और भय का निशान मिलता है -

किरन मर जायगी
प्यार की नीहार बूँद झर जायगी
मेरे माया लोक की विभूति बिखर जायगी ।
इसी बीच किरण मर जायगी ।[2]

ज़िन्दगी की अनिश्चित स्थितियाँ व्यक्ति मानव को अकेलेपन की ओर ले जायेंगी । प्रयोगवादी कवियों की प्रारंभिक रचनाओं में यह भावना सशक्त हो गयी है -

मित्र मेरे
आत्मा के एक ।
एकाकीपन के अन्यतम प्रतिरूप ।
जिससे अधिक एकाकी हृदय ।
कमज़ोरियों के एकमेव दुलार
भिन्नता में विकास ले, वह तुम अभिन्न विचार
बुद्धि की मेरी शलाका के अरुणतम नग्न जलते तेज
कर्म के चिर वेग में उर-वेग के उन्मेष ।[3]

अकेलापन का एक अलग एवं बेलौस चित्र मुक्तिबोध ने यों खींचा है -

और, जब
मेरा सिर दुखने लगता है,
धुँधले धुँधले अकेले में, आलोचना-शील

---

1. नेमिचन्द्र जैन - नये पत्ते - पृ.
2. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 22
3. गजानन माधव मुक्तिबोध - "आत्मा के मित्र मेरे" तारसप्तक - पृ. 46

अपने में से उठे धुएँ की ही चक्करदार
सीढ़ियों पर चढ़ने लगता हूँ ।[1]

ज़िन्दगी की राहों में अकेलापन ही सत्य है । भीड़ और अकेलापन के मध्य कवि मार्ग खोज रहे हैं -

हर सुविधा
एक ठप्पेदार अजनबी उगती है
हर व्यस्तता
और अधिक अकेला कर जाती है
हम क्या करें -
भीड़ और अकेलेपन के क्रम से कैसे छूटें ।[2]

नेमिचन्द्र जैन की "अनजाने चुपचाप" कविता में कवि ने अपनी एकाकी स्थिति यों चित्रित किया है -

मैं एकाकी,
मेरे आगे टेढ़ा-मेढ़ा बिखरा फैला है
अनन्त पथ अब भी बाकी ।[3]

प्रभाकर माचवे ने भी अकेलापन पर अपना सन्देह प्रकट किया है -

मुझे कौन दे संजीवन ? दिल का थाला कब से खाली है
शून्य दिशाएँ आँधी-लक्षण, मैं हूँ यह चा की प्याली है ।
बादल सागर की आशीषें, या कि धरित्री का प्रति ऋण है ?
करुण सजल बातास, अकेलापन क्यों मानव को दारुण है ?[4]

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध - "एक आत्मवक्तव्य" तारसप्तक - पृ. 77
2. गिरिजा कुमार माथुर - "दो पाटों की दुनिया" तारसप्तक - पृ. 163
3. नेमिचन्द्र जैन - "अनजाने चुपचाप" तारसप्तक - पृ. 17
4. प्रभाकर माचवे - "मैं और खाली चा की प्याली" तारसप्तक - पृ. 212

प्रयोगवादी कवियों में अस्तित्ववादी दर्शन से जुड़े निरर्थकबोध की भी सघन अभिव्यक्ति मिलती है -

> ऐसा लगता आज कि मेरा सारा जीवन नष्ट
> ऐसा लगता आज कि मेरी सभी साधना भ्रष्ट[1]

"व्यर्थ" शीर्षक कविता में नेमिचन्द्र जैन ने निरर्थकता की अभिव्यक्ति यों की है -

> तिरस्कृत व्यक्तित्व के
> थोथे असंगत दर्प ने मन की
> सहज अनजान स्वाभाविक अनावृत धार को
> कर दिया है कुण्ठित-
> सहज अंगारे
> कि मानो दब गये हो, बुझे-से
> जैसे कि ठण्डी राख से ।[2]

अज्ञेय ने "आज मैं पहचानता हूँ" कविता में निरर्थकता की अभिव्यक्ति इस प्रकार की है -

> अर्थ ! - रे कितनी निरर्थक वंचना को मोह-स्वर्णिम यह यवनिका -
> यह चटक, तारों सजा फूहड निलज आकाश -
> अर्थ कितना उभर आता था अचानक[3]

स्वर्ग और नरक की धारणाओं को धर्मवीर भारती ने व्यर्थ या निरर्थक माना है । निम्न पंक्तियों में कवि का मत स्पष्ट होता है -

> अगर सच पूछो मेरी प्राण ! व्यर्थ है, स्वर्ग नरक अनुमान
> तुम्हारी मुसकराहट में स्वर्ग, तुम्हारे आँसू में भगवान ।[4]

---

1. धर्मवीर भारती - "घबराहट की शाम" ठंडा लोहा - पृ. 61
2. नेमिचन्द्र जैन - "व्यर्थ" तारसप्तक - पृ. 28
3. अज्ञेय - "आज मैं पहचानता हूँ" तारसप्तक - पृ. 302
4. धर्मवीर भारती - "तुम" ठंडा लोहा - पृ. 28

अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव से उद्भूत मृत्यु चेतना प्रयोगवादियों की और एक खासियत रही है । ज़्यादातर कवियों ने इसकर कारगर अभिव्यक्ति भी की है । अस्तित्वसंकट में पले व्यक्ति के मन में मृत्यु की चिन्ता होना स्वाभाविक ही है । अज्ञेय ने मृत्यु को एक सत्य के रूप में स्वीकारा है । उनका मृत्युसंबंधी विचार ऐसा है -

क्रमशः मृत्यु मृत्यु भी सत्य ही है ;
उसे हम छोड नहीं सकते ।
हाँ, शिवता, सुन्दरता हम उसे दे सकते हैं ।
अभी किन्तु जीवन अन्तहीन तपस्या जिससे
हम मुँह मोड नहीं सकते ।[1]

गिरिजाकुमार माथुर ने भी मृत्युबोध को आत्मसात् करते हुए उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है -

मैं शुरू हुआ मिटने की सीमा रेखा पर,
रोने में था आरंभ किन्तु गीतों में मेरा अन्त हुआ ।
मैं एक पूर्णता के पथ का कच्चा निशान,
अपनी अपूर्णता में पूरन,
मैं एक अधूरी कथा
कला का मरण गीत, रोने आया ।[2]

उनकी "दो बाटों की दुनिया" में मृत्यु का स्वर पूर्णतः मुखरित हो गया है -

चारों तरफ शोर है
चारों तरफ़ भरा-पूरा है
चारों तरफ मुर्दनी है

---

1. अज्ञेय - "शाश्वत सम्बन्ध" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 40
2. गिरिजाकुमार माथुर - "अधूरा गीत" तारसप्तक - पृ. 142

भीड़ें और कूड़ा है ।[1]

नेमिचन्द्र जैन ने भी मृत्यु पर अपनी धारणा को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । कवि के सम्मुख एक ही क्षण में अनेक प्रकार की मानवीय अनुभूतियाँ आती जाती रहती हैं । मृत्यु भय भी उनमें शरीक हैं -

हो गया है आज इस क्षण में,
न जाने किसलिए उत्साह निर्वासित
भयानक शीत के, हिम के, अचानक खुल गये हैं द्वार
कब कब के रुके
जो पड गया फीका विरस निस्सार
सब कुछ-मरण, जीवन, अरुक हृत्कम्पन ।

प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतः जाहिर है कि ये मूलतः व्यक्तिपरक यानी आत्मनिष्ठ रही है । व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा, व्यक्ति की अहमियत की खोज जैसी मूल संवेदनाओं से ये प्रवृत्तियाँ जुड़ी हुई हैं । समाज की दुर्निवार परिवेश में रहते हुए व्यक्ति जिन भावनाओं से घेरे रहते हैं, जिन जटिलताओं से उन्हें साक्षात्कार होना पडता है उन सब के चित्रण के साथ ही व्यक्ति मन की बारीकियों की अभिव्यक्ति भी प्रयोगवादी कवियों के अन्तर्गत आती है । यानी प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्तियाँ आत्मपरक ही रही हैं ।

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - "दो पाटों की दुनिया" तारसप्तक - पृ. 163

चौथा अध्याय

प्रयोगवादी कविता का शिल्प पक्ष

प्रयोगवादी कविता का शिल्पपक्ष पूर्ववर्ती कविता की तुलना में व्यतिरिक्त एवं अनेक आयामी है । छायावाद और प्रगतिवाद की अपेक्षा इस काव्य-पद्धति में शिल्पविधान पर ही सबसे अधिक ध्यान दिया गया था । डॉ. कैलाशवाजपेयी का कथन इस संदर्भ में समीचीन है कि छायावाद की अपनी विशिष्ट शैली के ही सामने प्रयोगवाद ने भी प्रगतिशील काव्य के समस्त तत्वों को आत्मसात् कर कथन का **एक** विशेष ढंग अपनाया है जिसे बहुत कुछ अंशों में प्रतीकात्मक शैली की संज्ञा प्रदान की जा सकती है ।[1] इसकी पूर्ववर्ती काव्यधारा यानी प्रगतिवाद ने सामाजिकता को ज़्यादा महत्व दिया पर शिल्प सौंदर्य की ओर कवियों का दृष्टिकोण उतना जीवंत नहीं रहा था । किन्तु प्रयोगवाद में वस्तुतत्व से बढ़कर रूपतत्व को प्रमुखता दी गयी । इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि प्रयोगवादी कवि ने वस्तुतत्व की अपेक्षा शैली और शिल्प के नवीन प्रयोगों पर ही सारी शक्ति केन्द्रित कर देने का समर्थन व आग्रह किया । उन्होंने यह भी जोड दिया कि सूक्ष्म-कल्पना, नये रूपकों तथा प्रतीकों का प्रयोग काव्य के मूल स्वरूप को विकृत करने के स्थान पर इसमें चमत्कार तथा सौंदर्य की सृष्टि करता है ।[2] कालान्तर में प्रयोगवादियों की दृष्टि शिल्प एवं शैली के ज़रिये वस्तु की सजीवता की ओर भी मुड गयी थी ।

यह सर्वविदित बात है कि प्रयोगवादी कविता में वैयक्तिक

---

1. डॉ. कैलाशवाजपेय - आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - पृ. 273
2. डॉ. शिवकुमार मिश्र - नया हिन्दी काव्य - पृ. 209

अनुभूतियों को प्रमुखता देने का प्रयास हुआ था । प्रगतिवाद में सामाजिकता की प्रवृत्ति प्रमुख रही तो प्रयोगवाद में व्यक्ति को केन्द्र में रखा गया । पूर्ववर्ती कवियों की स्थूलता के विद्रोह में सूक्ष्मता की ओर भी कवियों का ध्यान गया था । अतः वैयक्तिक अनुभूतियों को काव्य सौंदर्य का जामा पहनाकर उसे व्यापकता प्रदान करने में उनको सफलता मिली थी । प्रयोगवादी कवि की यही मान्यता रही कि व्यक्ति के स्वत्व की सुरक्षा के लिए तत्कालीन स्थूल कलादृष्टि की पूर्वनिर्धारित व्यवस्था का विरोध कर लिया जाय । प्रगतिवाद के प्रति विरोध इसका प्रथम मापदंड है । इसके लिए उन्होंने शिल्प को औजार के रूप में इस्तेमाल किया और इस क्षेत्र में विभिन्न आयामों का अन्वेषण भी किया । इस तलाशी मानसिकता ने कवियों को नये नये प्रयोगों के लिए प्रेरित भी किया । शिल्प के इस नये ढाँचे के माध्यम से वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए इन्होंने विशेष रुचि प्रकट की । इस संदर्भ में उन्होंने समझ लिया कि अपने अनुभूत सत्य को पाठकों तक पहुँचाने के लिए भाषा अपर्याप्त है । तारसप्तक के वक्तव्य में अज्ञेय ने लिखा -"कवि अनुभव करता है कि भाषा का पुराना व्यापकत्व उसमें नहीं है शब्दों के साधारण अर्थ से बडा अर्थ हम उसमें भरना चाहते हैं, पर उस बडे अर्थ को पाठक के मन में उतार देने के साधन अपर्याप्त हैं । वह या तो अर्थ कम पाता है या कुछ भिन्न पाता है ।"[1]

कवि और पाठक के आपस में मिलाने का सेतु है भाषा । भाषा का व्यापक एवं विभिन्न प्रयोग होता है । भाषा की उर्वरता शब्दों के जरिए ही सम्पन्न हो सकती है । लेकिन प्रयोगवादी कवियों के सामने पुराने शब्दों में नये अर्थ भरने का सवाल उठा था । अज्ञेय ने लिखा है कि भाषा को

---

1. अज्ञेय - तारसप्तक "वक्तव्य" - पृ. 276

अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से, अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, अधूरे वाक्यों से - सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की सृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके ।[1]

व्यक्ति-अस्तित्व की सुरक्षा का सवाल प्रयोगवादियों को निरंतर कचोटता रहा था । प्रयोगवादी कवि के सामने आधुनिक जीवन की सब से बड़ी समस्या व्यक्ति सत्ता की रही थी । इसे सुलझाने के लिए वे निरन्तर जागरूक भी रहे । इसके लिए, भाषा की क्रमशः संकुचित होती हुई सार्थकता की केंचुल फाड़कर उसमें उन्होंने अधिक व्यापक एवं सारगर्भित अर्थ भरना चाहा था ।[2] कवि व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाने का सनातन उत्तरदायित्व निबाहना चाहते थे । उनकी पहली समस्या यही रही कि जो व्यक्ति का अनुभूत है उसे समष्टि तक कैसे उसकी संपूर्णता में पहुँचाया जाये ।[3] यानी प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति की अनुभूतियों को कलात्मक ढंग से चित्रित करने का भरसक प्रयास करना चाहा किन्तु भाषा की अपर्याप्तता की वजह से पुराने शब्दों में नये अर्थ भरने के लिए मजबूर हो गये । इस दायित्व को निभाने के लिए कवि ने एक नये शिल्पविधान का आविष्कार किया । स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्तिवादी भूमिका को गहराने के लिए काव्य क्षेत्र में प्रयोगों का एक आन्दोलन ही शुरू किया ।

प्रयोगवादी कविता की भाषा

जैसे ऊपर बताया गया कि प्रयोगवादी कवियों ने भाषा को भी

---

1. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ. 276
2. वही
3. वही - पृ. 277

प्रयोग का माध्यम बनाया था । इसकी भाषा छायावाद से भिन्न है । वह प्रगतिवादी भाषा से भी अलग है । छायावादी काव्यभाषा कोमल और सुकुमार थी तो प्रगतिवादी कविता में पहली बार काव्य की भाषा को बोलचाल की भाषा के निकट लाने की कोशिश की गयी । प्रयोगवादियों ने जीवन तत्वों को उनकी समग्रता में दूसरों तक पहुँचाने के लिए अभिधात्मक भाषा का हूबहू प्रयोग किया । शब्दों में नवीनता लाने के साथ ही नये नये अर्थ भरने का प्रयास भी उन्होंने किया । काव्य भाषा को बोलचाल की भाषा के रूप में परिवर्तित करने का श्रेय भी प्रयोगवाद को मिला है । इसपर डॉ. निर्मल शर्मा ने लिखा है कि काव्यभाषा को जनभाषा के निकट लाने अथवा काव्यनिबद्ध अनुभूति को जनसंपर्क में लाने के लिए बदलते हुए जीवन को नयी संभावनाओं के उद्घाटन तथा परिवर्तित जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए हिन्दी काव्य क्षेत्र में जिस नूतन काव्य शैली का प्रयोग हुआ - वह शैली प्रयोगवाद कहलाई ।[1] दर असल छायावादी कविता को सजावट और कृत्रिमता से हटते हुए प्रयोगवादी कवि जनभाषा की ओर मुडने लगे । इसका समर्थन करते हुए प्रभाकर माचवे ने लिखा है -"ज्यों ज्यों कविता की भाषा अधिकाधिक आम जनता की भाषा बनती चलेगी उसमें प्रादेशिक शब्द अधिक आयेंगे और यह इष्ट ही होगा ।"[2] अज्ञेय इस दिशा के प्रथम सूत्रधार रहे हैं । इसपर टिप्पणी करते हुए कमलाप्रसाद पाण्डेय का कथन है कि, अज्ञेय एक जागरूक और रचनात्मक शक्तिसंपन्न कलाकार हैं । उन्होंने कवि को स्वयंभू मानकर उसकी सर्जनात्मक चेतना को उकसाया है । उन्होंने भाषा को गति नहीं दी, उसे सत्यान्वेषी बनाया है । वे ग्राम भाषा को काव्य भाषा बनाने के हिमायती न होकर काव्य भाषा के विकास में देशज शब्दों की महत्वपूर्ण भूमिका के समर्थक रहे हैं ।"[3]

---

1. डॉ. निर्मल शर्मा - अज्ञेय काव्य की भाषा संरचना का अध्ययन - पृ.27
2. प्रभाकर माचवे - तारसप्तक वक्तव्य - पृ. 185
3. डा. कमलाप्रसाद पाण्डेय - छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि - पृ. 437

भारत भूषण अग्रवाल ने भाषा के रूपायन के संबन्ध में अपनी वाणी बुलन्द की है । उनकी राय में देवताओं की भाषा के बावजूद भी यदि उसका जीवन से सरोकार नहीं है तो वह बेकार और अनावश्यक है -

हमको न ज़रूरत आज देव वाणी की, हम खुद ढालेंगे
जीवन की भट्टी में भाषा, जो चाहा रूप बना लेंगे ।[1]

भाषा पर धर्मवीर भारती का मत है कि भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए बस । न तो पत्थर का टोंका बनकर कविता के गले में लटक जाये और न रेशम जाल बनकर उसकी पाँखों में उलझ जाये ।[2] भवानी प्रसाद मिश्र ने "अपने कवि" को सम्बोधित करते हुए लिखा कि

जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख ;
और उसके बाद भी
हम से बड़ा तू दिख ।[3]

भाषा का विकास शिल्प का विकास भी है । प्रयोगवादी कवियों का खासकर अज्ञेय का नूतन शब्द प्रयोग भाषा को अत्यधिक प्रभावित करता आया है । श्री नन्द किशोर आचार्य का तर्क है कि, "कविता का लय और बुनावट प्रयुक्त भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्ति और ध्वनिवैशिष्ट्य से सदा प्रभावित होती रही है । अतः भाषा के विकास के साथ ही कविता के शिल्प का विकास सहज स्वस्थ एवं विकसलशील प्रवृत्ति हैं । इस रूप में देखने पर अज्ञेय का शिल्प के क्षेत्र में भी प्रयोग का आग्रह अनुचित नहीं लगता ।"[4]

---

1. भारत भूषण अग्रवाल - "अपने कवि" से तारसप्तक - पृ. 91
2. धर्मवीर भारती - दूसरा सप्तक "वक्तव्य" - पृ. 167
3. भवानी प्रसाद मिश्र - दूसरा सप्तक वक्तव्य - पृ. 4
4. नन्दकिशोर आचार्य - अज्ञेय की काव्यतितीर्षा - पृ. 24-25

प्रयोगवादियों ने कविता रचना के लिए बोलचाल की भाषा के मुहावरे, शब्द ताल और गति तक को अपनाया था । जैसे डॉ. पवन कुमार ने लिखा है कि बातचीत के टोन और लहजे की भी स्वाभाविकता और ताजगी बनाये रखने के लिए कविता की भाषा में इनको महत्वपूर्ण स्थान मिला । इस प्रकार के प्रयोग से भाषा की शैली में सीधापन यथार्थ और मार्मिकता का सहज ही समावेश हुआ है ।[1] इसके संबंध में अज्ञेय ने भी लिखा है कि कवि जब अपना सत्य दूसरों पर प्रयोग करता चलता है तब अनिवार्यत: वह मानता है कि वह सत्य जितने अधिक व्यक्तियों पर प्रकट हो, उतना ही काव्य सफल है । इसलिए कविता के लिए बोलचाल की भाषा सर्वदा आदर्श रूप में रहती है ।[2]

नये शब्दों का प्रयोग

भाषा की सृजनात्मकता का विकास शब्दों के उचित प्रयोग से होता है । कविता में अभीष्ट बात को अभिव्यक्ति के लिए शब्दों के अभाव में प्रयोगवादी कवियों ने अन्य भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किये । यों काव्य में सभी प्रकार के शब्दों का चयन होने लगा । तत्सम, तद्भव, देशज, उर्दू और अंग्रेज़ी शब्दों के प्रयोग के साथ ही लोकप्रचलित बोलियों से भी शब्द ग्रहण किए जाने लगे । प्रयोगवादी कविताओं के बारीकी विश्लेषण से पता चलता है कि कवियों ने अन्य भाषाओं के शब्दों के प्रयोग से भाषा को अत्यधिक संपन्न किया है - संस्कृत शब्द, उर्दू और फारसी से गृहीत शब्द अंग्रेज़ी शब्द, लोकजीवन से प्राप्त शब्दावली के साथ ही मनगढंत नए शब्दों का प्रयोग भी प्रयोगवादी कवियों ने किया है ।

---

1. डा. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 319
2. अज्ञेय - समकालीन हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ. 21

<u>संस्कृतनिष्ठ भाषा शैली का रूप</u>

प्रयोगवादी कवियों ने संस्कृतनिष्ठ पदावली का प्रयोग करके कविता कामिनी को अलंकृत करने का ज़्यादातर प्रयास किया है अज्ञेय की पंक्तियाँ हैं -

निबिडान्धकार
को मूर्त रूप दे देनेवाली
एक अकिंचन निष्प्रभ अनाहूत
अज्ञात द्युतिकण -
आसन्न पतन, बिन जमी ओस की अन्तिम
ईषत्करुण, स्निग्ध कातर शीतलता
अस्पष्ट किन्तु अनुभूत -[1]

नरेश मेहता ने भी संस्कृत पदावली का सहारा लिया है -

कहीं क्षिप्रा में श्रद्धा एक
अर्घ्य दे गुनती होगी श्लोक
x x x x x
पुष्ट चिट्टे वृषभों को देख
लगेगा दिन बन आया बैल
चीर भूमा का उर आधार ।[2]

मुक्तिबोध की कविताओं में संस्कृत शब्दों का प्रयोग हूबहू मिलता है -

उन ज्योति-क्षणों में देख लिया
करता वह सत्य महदाकार ।
सन्नद्ध हुआ वह ज्वाल-विद्ध करने को
सारा तम-प्रसार,

---

1. अज्ञेय -"उषःकाल की भव्य शान्ति" तारसप्तक - पृ. 284
2. नरेश मेहता - "उषस अश्व की वल्गा" दूसरा सप्तक - पृ. 119

वह जन है जिसके उच्च-भाल पर
विश्व-भार, औ" अन्तर में
निःसीम प्यार ।।

उर्दू और फारसी शब्दों का प्रयोग

प्रेम और रोमांस की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रायः उर्दू और फारसी शब्दों का प्रयोग होता है । प्रयोगवादी कवियों ने उर्दू-फारसी शब्दावली को ग्रहण किया है । "ठंडा लोहा" में धर्मवीर भारती ने इनका कई बार प्रयोग किया है -

गुनाहों से कभी मैली हुई बेदाग तनहाई
सितारों के जलन से बादलों पर आँच कब आई ?
न चाँद को कभी व्यापी अमा की घोर कजराई
बडा मासूम होता है गुनाहों का समर्पन भी
हमेशा आदमी मज़बूर होकर लौट आता है ।[1]

शमशेर बहादुर सिंह ने "कुछ शेर" में उर्दू-फारसी शब्दावली का सटीक प्रयोग किया है -

खामोशिए हुआ हूँ मुझे कुछ खबर नहीं,
जाती हैं क्या दुआएँ तेरे आस्ताँ के पार ?
× × × × ×
हकीकत को लाये तरवैयुल के बाहर,
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाये ।[2]

---

1. धर्मवीर भारती - ठंडा लोहा - पृ. 29
2. शमशेर बहादुर सिंह - "कुछ शेर" दूसरा सप्तक - पृ. 91

अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग

मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी समाज में अंग्रेज़ी भाषा का ज़्यादा असर पडता है । इसलिए काव्य में इन शब्दों का खुलकर प्रयोग करने के लिए कवि उत्सुक दिखाई देते हैं । "चाँद का मुँह टेढा है" में मुक्तिबोध ने अंग्रेज़ी शब्दों का माध्यम ग्रहण कर लिया है -

करफ़्यू नहीं यहाँ, पसन्दगी..... सन्दली
किंग्सवे में मशहूर रात की है ज़िन्दगी ।[1]

"धूप के धान" में गिरिजाकुमार माथुर ने अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग यों किया है -

.है स्काइवेज अधर में
लम्बे बुलीवार्ड
लानों के हरे हाशिए
स्वप्नों भरे रंजित निवास गृह
फ्लैट, सुइट
डाउन टाउन के चमत्कार ।[2]

भारत भूषण अग्रवाल ने लिखा है -

"फ्यूज़ हो गया वह प्रकाश पुंज ।"[3]

गिरिजाकुमार माथुर ने कई लोकप्रचलित अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग किया है -

कैरियर टोकरी या हैंडिल में
कुछ के खाली कटोरदान बँधे
कुछ में हैं फाइलें हर छिन भूखी[4]

---

1. मुक्तिबोध - चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 35
2. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ. 60
3. भारत भूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन - पृ. 131
4. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ. 45

लोकजीवन से प्राप्त शब्दावली

व्रज व अवधी लोकभाषाएँ हैं जिनमें लोकसंस्कृति स्पष्टतः जाहिर होती है । प्रयोगवादी कविता में व्रज व अवधी शब्दों का यत्र तत्र प्रयोग मिलता है । अज्ञेय ने लिखा है -

मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता -
मैं ही वह मीनार शिखर का प्रार्थी मुल्ला -
मै वह छप्पर तल का अहंलीन शिशु भिक्षुक[1]

"बावरा अहेरी" में भी अज्ञेय ने लोक शब्दों का प्रयोग करके कविता को नूतनता की भंगिमा दी है -

शरद चाँदनी बरसी
अंजरी भर-भर जीले
उठी ललक
हिय उमगा
अनकही
हुई लालसा ।
x x x
पाहुन मन माने ।[2]

लोकगीतों और ग्रामीण शब्दावली का प्रयोग भी अज्ञेय ने किया है -

ओ पिया, पानी बरसा ।
ओ पिया, पानी बरसा ।
बादलों का हाशिया है आसपास -
घास की हुलसानी
मानिक के झूमर-सी
झूमी मधु-मालती[3]

---

1. अज्ञेय -"उषःकाल की भव्य शान्ति" तारसप्तक - पृ. 287
2. अज्ञेय - बावरी अहेरी - पृ. 56-57
3. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 204

बोलचाल के शब्दों का प्रयोग भी अनेक प्रयोगवादी कवियों ने किया है । इतिहास की हवा में अज्ञेय ने लिखा है -

इतिहास के पात्रों पर पगुराती हुई भैंस की आँखों में [1]

"चाँदनी जी लो" में अज्ञेय ने लिखा है -

खड़े रहो ढिंग । [2]

बोलचाल के भाषा के प्रयोग के आधार पर देखे तो "हरी घास पर क्षण भर" की कविताएँ महत्वपूर्ण हैं । "कलगी बाजरे की" कविता में "टटकी, कलगी छरहरी ; मुलम्मा जैसे शब्दों के प्रयोग से कविता सहज एवं प्रवाहमयी हो गयी है -

हरी बिछली घास
ढोलती कलगी छरहरी बाजरे की ।
अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोर की नीहार -न्हाली कुँई
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो
नहीं कारण ही मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही
ये अपमान मैले हो गए हैं ।
देवता इन प्रतीकों से कट गये हैं कूच ।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है [3]

---

1. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 3।
2. अज्ञेय - बावरा अहेरी - पृ. 56
3. अज्ञेय - "कलगी बाजरे की" हरी घास पर क्षण भर - पृ. 57

रामविलास शर्मा ने ग्रामीण माहौल में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है । व्यावहारिक या रोजमर्रा जीवन के मामूली शब्दों का प्रयोग निम्न पंक्तियों में हुआ है -

कतकी का दर्रा, जिस पर हैं जा रहीं
घुँघरू की ध्वनि करती इस सुनसान में
पाँति बाँधकर धीरे धीरे लाढ़ियाँ [1]

"सन्नाटा" में भवानीप्रसाद मिश्र ने जनसाधारण की भाषा का प्रयोग किया है जिसकी वजह कविता सहज एवं बोधगम्य हो गयी है -

"लो पहले अपना नाम बता दूँ तुमको,
फिर चुपके धाम बता दूँ तुमको -
तुम चौंक नहीं पड़ना यदि धीमे-धीमे
मैं अपना कोई काम बता दूँ तुमको [2]

मन गढंत शब्दों का प्रय ग

प्रयोगवादी कवियों ने पुराने शब्दों को तोड़ मरोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार शब्दों का सृजन करने की पक्षधरता दिखाई है । "उषा की अरुणाली थी सारा जग सीचे" इस में "अरुणिमा" के लिए अरुणाली शब्द का प्रयोग किया गया है । "सुनहरापन" के लिए "सोन मछली" का और "झेंप" के लिए "अनझिप" शब्द का प्रयुक्त करके अज्ञेय ने कविता में नया भावबोध लाने का अथक परिश्रम किया है । गिरिजाकुमार माथुर ने लालिमा के लिए "ललाई", चाँदनी के लिए "चंदीली", पूर्णिमा के लिए "पूरनिमा" शब्द का प्रयोग किया है -

---

1. रामविलास शर्मा - "कतकी" तारसप्तक - पृ. 238
2. भवानीप्रसाद मिश्र - "सन्नाटा" दूसरा सप्तक - पृ. 10

खिली चँदीली रात की कली सुहावनी
छिटक रही है पुरनिमा की चाँदनी
x x x x
नयनों में मद भरी ललोई झूलती ।[1]

मनगढंत शब्दों का प्रयोग करने में धर्मवीर भारती भी सिद्धहस्त है । उनका एक कवितांश ऐसा है -

प्रभुताई मसीहाई की भोंडी नकलें ।[2]

शब्दों का तोड मरोडकर प्रयुक्त करने के अतिरिक्त सीधे-उल्टे अक्षरों से लिखने की प्रवृत्ति भी प्रयोगवादियों ने की है । चित्रकला से सम्बद्ध यह शैली पश्चिम की देन है । पश्चिमी विद्वानों का असर प्रयोगवादी कवियों पर भी पडा था जैसे ई.ई.कमिंग्ज का जो कला कला के लिए सिद्धान्त का पक्षपाती था । काव्य में नवीनता के लिए उसने अपनी रचनाओं को विशेष प्रका से छपवाया भी था ।[3] काव्य रचना में सफलता पाने की वजह से कवियों को ऐसे परिष्कृत एवं नवीनतम उपादानों को स्वीकार करना पडा था । अज्ञेय ने लिखा भी है कि कवि को आडी-तिरछी पंक्तियों, मोटे पतले टाइपों आदि अनेक बातों का सहारा लेना पडता है । इस घोषणा के अनुरूप प्रयोग प्रचुर मात्रा में होने लगे -

फूल -
थे ;
हो गये

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - धूप के धान - पृ. 67
2. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष - पृ.84
3. डॉ.पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ.39

तुम है
मौन धारा में
संग उस के,
अमर जिसके गान ।[1]

प्रयाग नारायण त्रिपाठी की "आतशी शीशा" कविता में भी इस प्रकार का प्रयोग द्रष्टव्य है -

कौन ?
सौदागार ?
कहो - क्या बेचते हो ?
जी - यही - बस आतशी शीशा[2]

अलंकार विधान

प्रयोगवादी कविता में पुराने उपमानों के बदले नये उपमानों का बराबर प्रयोग हुआ है । आधुनिक युग के भावबोध के प्रस्फुटीकरण के लिए प्रगतिवादी कवियों ने अप्रस्तुत योजना का आविष्कार किया था । इसके साथ मानवीकरण और विशेषण विपर्यय का भी प्रयोग हुआ है ।

अप्रस्तुत योजना

अज्ञेय ने परंपरागत उपमानों का विद्रोह करते हुए उनके बदले नये नये उपमानों को प्रस्तुत किया है । प्रयसी की तुलना उन्होंने विशिष्ट ढंग से

---

1. शमशेर बहादुर सिंह - दूसरा सप्तक - पृ. 99
2. प्रयागनारायण त्रिपाठी - तीसरा सप्तक - पृ. 23

की है -

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
× × × ×
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही कि
ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।[1]

गिरिजाकुमार माथुर की चाँदनी को देखने की एक नयी दृष्टि "धूप के धान" में जाहिर होती है -

चाँद पूरा साफ
आर्ट पेपर ज्यों कटा हो गोल[2]

कवि की चित्रकला सम्बन्धी दृष्टि भी इन पंक्तियों में स्पष्ट है ।

यद्यपि आँखों की तुलना मछली के साथ करने की परंपरा है फिर भी अज्ञेय ने मछली का उपमान उनके व्यक्तिवादी स्वरूप को उभारने के लिए किया है । निम्न पंक्तियों में इसका चित्रण हुआ है -

न जाने मछलियाँ हैं या नहीं
आँखें तुम्हारी,
किन्तु मेरी दीप्ति जीवन चेतना निश्चय नदी है ।[3]

---

1. अज्ञेय - "कलगी बाजरे की" हरी घास पर क्षण भर - पृ. 57
2. गिरिजाकुमार माथुर - "चन्दरिमा" धूप का धान - पृ. 88
3. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 89

भारत भूषण अग्रवाल ने आधुनिक यांत्रिक युग से आक्रान्त मानवीय निरीहता और निरर्थकता को व्यंजित करने के लिए अप्रस्तुतों का विधान किया है -

मैं निरा बिलायती स्पंज हूँ
मेरे प्राण रिक्त और छिद्रमय
उनमें कहाँ है स्रोत ?
मैं तो मात्र बाहर के जीवन को सोखकर
फिर उगल देता हूँ
सो भी तब जब कोई आके निचोड़े मुझे ।[1]

धर्मवीर भारती की कविता में भी अप्रस्तुतों के माध्यम से जीवन की निरर्थकता की अभिव्यक्ति हुई है -

मस्तक इतना खाली खाली
लगता जैसे
हो कोई सड़ा हुआ नारियल ।[2]

भारती के "सात गीत वर्ष" में बादल की तुलना चाँदी से की गयी है -

एक अकेला चंचल बादल
चाँदी के हिरने सा घाटी में चरता है ।[3]

नरेश मेहता ने श्वेत आंचल की तुलना करने के लिए चड़िया का उपमान अपना लिया है -

चाहता है मन
तुम यहाँ बैठी रहो,
उड़ता रहे चिड़िये सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आंचल[4]

---

1. भारत भूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन - पृ. 56-60
2. धर्मवीर भारती - दूसरा सप्तक - पृ 183
3. धर्मवीर भारती - सात गीत वर्ष - पृ. 143
4. नरेश मेहता -"चाहता मन" दूसरा सप्तक - पृ. 110

बिजली के बल्ब की तुलना खून की बूँदों से करते हुए रामविलास शर्मा ने एक नवीन उपमान की कल्पना की है -

लहू की बूँदों - से
जलते हैं बिजली के बल्ब सूनी सड़कों पर लाल-लाल[1]

मुक्तिबोध ने चाँदनी को जेल के कपड़े से तुलना की है -

लिपे हुए कमरे में
जेल के कपड़े से फैली है चाँदनी ।[2]

मदन वात्स्यायन की "उषा स्तवन" कविता में अप्रस्तुत योजना की स्वीकृति यों हुई है -

सफेद-हरे अंगूरी वस्त्र ने
पतले कुहासे-सा उसे आधा ही ढँक रखा था ।[3]

प्रभाकर माचवे की "वृष्टि" कविता में उपमानों का एक खास प्रयोग दर्शित होता है । ध्वनियों का सहारा भी इसके लिए उन्होंने लिया है -

वह पुनः गुरिल्ला दल-सी -
बही हवा दुर्द्धर्ष ।
ऐसी वर्षा ।[4]

यों सप्तकों के कवियों ने कविता में नवीनता लाने के लिए अलंकारों का ज़्यादातर प्रयोग विशेष ढंग से किया है । अभीप्सित भावों की अभिव्यक्ति समायी नहीं जाती । इसलिए प्रयोगवादी कवियों ने नये नये उपमानों की अभिव्यक्ति करके भाषा को संवारने का प्रयास किया जिसकी वजह कविता में सौंदर्य ही नहीं नूतनता की खासियत भी समाविष्ट हो गई है ।

---

1. रामविलास शर्मा - "विश्व शांति" तारसप्तक - पृ. 262
2. मुक्तिबोध - "चाँद का मुँह टेढ़ा है" - पृ. 29
3. मदन वात्स्यायन -"उषा स्तवन" तीसरा सप्तक - पृ. 80
4. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 115

मानवीकरण

मानवेतर वस्तुओं पर मानवीय भावों का आरोप लगाना प्रयोगवादी कवियों की खासियत है । उन्होंने प्राकृतिक माध्यमों से मानवीय व्यापारों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । सागर, लहर, धूप, तारा, सन्ध्या, रात आदि उपादानों का ही उन्होंने अधिकतर प्रयोग किया है । अज्ञेय ने चाँद को पुरुष तथा सन्ध्या को नारी के रूप में चित्रित किया है -

चाँद चितेरा
आंक रहा है शारद नभ में
एक चीड का खाका ।[1]

सन्नाटों का भी मानवीकरण अज्ञेय की कविता में मिलता है -

मुझे लगा, मैं सहसा
सुन पाया सन्नाटे की कन बतियां[2]

प्रकृति के वृक्षों के प्रेमव्यापार की सही अभिव्यक्ति करके उनमें वर और वधू के आरोप से मानवीकरण का उदात्त मसलन ही प्रस्तुत किया गया है -

पीपल की सूखी डाल स्निग्ध हो गई
सिरिस ने रेशम से वेणी बांध ली
नीम के भी बौर में मिठास देख
हंस उठी कचनार की कली
टेसुओं की आरती सजा के
बन गयी वधू वनस्थली[3]

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 115
2. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार - पृ. 44
3. अज्ञेय - बावरा अहेरी - पृ. 18

चाँद और साँझ को पति-पत्नी के रूप में चित्रित किया गया है -

पति सेवा रत साँझ
उझकता देख पराया चाँद
लजा कर ओट हो गई ।[1]

प्रकृति के अन्य उपकरणों का भी इन कवियों ने मानवीकृत कर लिया है । "सावन-मेघ" में अज्ञेय ने बादल और भूमि पर मानवीकरण की एक अद्भुत झाँकी प्रस्तुत की है -

घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष -
वज्र-सा, यदि तडित् से झुलसा हुआ-सा ।[2]

मदन वात्स्यायन की कविता "असुरपुर में दस से छः" में मशीनों के मानवीकरण का एक सुन्दर चित्र खींचा गया है - सोते मानव के ऊपर मशीनों की शिकायत है । पर मानव की दृष्टि में उसकी थकावट ज़्यादा है । किन्तु मशीनें उक्त मानव को गाली देते हैं -

दो घण्टे तो काम किया है,
इतने में तू थका हुआ है ।
क्षण-क्षण, पल-पल,
बरस-बरस भर
बे-सुस्ताये हम खटती हैं ।

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 115
2. अज्ञेय - "सावनमेघ" तारसप्तक - पृ. 282

सिर्फ तुम्ही को सर्दी लगती,
तुमने ही बस खाया है क्या ?
केवल तुम्हें चाहिए गरमी -
x x x x
बातें बडी बडी करता है
ऐंठा ऐंठा ही फिरता है
हम सब डटी हुई ड्यूटी पर
पर उसे कोने में पाइप पर
ऊँध-रहा था मानव छि: छि:
ऊँध रहा था मानव तू तो
ऊँध रहा था मानव [1]

इस प्रकार प्रयोगवादी कवियों ने मानवीकरण अलंकार का धड़ल्ले से प्रयोग किया है । सबसे ज़्यादा प्रयोग अज्ञेय की तरफ से ही हुआ है ।

विशेषण विपर्यय

यह अलंकार सूक्ष्म सौंदर्यबोध की उपज है । इसमें किसी विशेष्य के विशेषण को अन्य शब्द से जोड देने की प्रवृत्ति होती है । यानी साधारण विशेषण शब्दों को छोडकर बिलकुल असम्बद्ध शब्दों का प्रयोग करने से ही विपर्यय होता है । मृदुगान के बदले "गीला गान" लिखने से कविता का पाठक आसानी से इसका उद्देश्य नहीं समझेगा । लेकिन तदुपरान्त उसकी समझ में यह बात जम जायेगी कि करुणा का उद्रेक करने में चमत्कार उत्पन्न

1. मदन वात्स्यायन - तीसरा सप्तक - पृ. 91-92

होता है । प्यार का पीड़ित होना, प्यासी टटोलती हुई यादें, दर्द का रुँध जाना आदि इसके कुछ उदाहरण हैं ।

प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय ने इस अलंकार का काफी प्रयोग किया है । उनकी एक कविता की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

पी गया हूँ अधिक कुछ में
स्निग्ध कहलाती हुई सी
धूप यह हेमन्त की ;
आज मुझको चढ़ गयी है
यह अथाह अकूल अपलक
नीलिमा आकाश की ।[1]

"आँगन के पार द्वार" में अज्ञेय ने लिखा है -

थकी हारी साँसें बासी
x x x x
यादें अपने को टटोलतीं
सहमी, ठिठकी, प्यासी[2]

निम्न पंक्तियों में भी विशेषण विपर्यय की प्रवृत्ति मिलती है -

बेहया धड़-धड़-गाड़ियों की[3]

"हरी घास पर क्षण भर में" अज्ञेय ने अवसाद का चित्रण यों किया है -

चोट खाकर जग उठा सोया हुआ अवसाद[4]

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 90
2. अज्ञेय - आँगन के पार द्वार - पृ. 25
3. वही - पृ. 27
4. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 17

प्रतीक योजना

प्रतीक अंग्रेज़ी शब्द Symbol का समानार्थक है । कतिपय संदर्भों में शब्दों की शक्ति सीमित होती है । कवि के सामने जब यह समस्या आ जाती है कि कैसे बहुत कम शब्दों के प्रयोग से अपने मानसिक भावों को पाठकों के सम्मुख अभिव्यक्त करे तब उसे सुलझाने के लिए ही वे प्रतीकों का प्रयोग करते हैं । भावों की सही अभिव्यक्ति के साथ सौंदर्य की प्रस्तुति में प्रतीकों का योगदान महत्वपूर्ण होता है । अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को स्पष्ट करने की एक सफल पद्धति के रूप में भी प्रतीक योजना को मान्यता मिली है । प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार प्रतीक ऐतिहासिक और जातीय चेतना का प्राणमय संवाहन है । उन्होंने लिखा -"बिम्ब समाज को भुलाकर वैयक्तिक स्तर पर ही रचा जा सकता है । लेकिन प्रतीक के सामने हमेशा समाज रहता है । इसलिए बिम्ब में आत्मानुभूत रचनात्मकता के कारण अनिश्चित अर्थों की अपार संभावनाएँ खुली रहती हैं । जबकि प्रतीक का अर्थ समाज निश्चित करता है या जो नया अर्थ उसमें से कवि उत्पन्न करता है उसकी भी किसी न किसी अंश में सामाजिक स्वीकृति रहती है ।[1]

प्रतीकों के प्रयोग से भाषा में एक नयी अर्थवत्ता ; नयी शक्ति आती है ।[2] प्रतीकों के प्रयोग की परंपरा भारतीय साहित्य में रही है । संस्कृत साहित्य शास्त्र में उपलक्षण शब्द प्रयुक्त हुआ है और श्रीमद्भागवत में प्रतीकवाद के लिए परोक्षवाद शब्द प्रयुक्त हुआ है ।[3]

---

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - काव्य भाषा की तीसरी आँख - पृ.41
2. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 79
3. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 285

प्रयोगवादी कविता में प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है । यही नहीं काव्य में प्रतीकों की आवश्यकता पर प्रयोगवादी कवि अभिज्ञ रहे हैं । इस संदर्भ में अज्ञेय ने यह स्पष्ट किया है कि प्रतीक वास्तव में ज्ञान का एक उपकरण है, जो सीधे-सीधे अभिधा में नहीं बँधता उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं ।[1] प्राचीन और रूढ़ प्रतीक अब नए काव्य के लिए अनुकूल नहीं रह गये हैं ; अतएव प्रयोगवादी कवि ने नवीन प्रतीकों का प्रयोग करके कविता को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है । उन्होंने यांत्रिक युग की जटिल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए नये प्रतीकों की खोज की क्योंकि घिसे पिटे प्रतीक और उपमान आकर्षणहीन हो गये थे । बर्तनों के अधिक घिसने से उसका मुलम्मा छूट जाता है । उसी प्रकार प्रतीकों के अधिक प्रयुक्त होने से उनकी अर्थवत्ता भी समाप्त होती है । कवि की दृष्टि में यही सत्य है -

ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच ।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।[2]

अज्ञेय पर इलियट का गहरा प्रभाव पड़ा है । इस पर टिप्पणी करते हुए मुरारीलाल शर्मा का कथन है कि कतिपय विद्वानों ने हिन्दी जगत् में काव्य के प्रयोगों की परंपरा को उत्तरोत्तर विकसित करने की प्रेरणा देनेवाले अज्ञेय जी पर अंग्रेज़ी काव्य का प्रभाव माना है । उसमें भी विशेष रूप से टी.एस. इलियट का ।[3]

---

1. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ. 45
2. अज्ञेय - नयी कविता-2 - पृ. 37
3. मुरारीलाल शर्मा "सुरस" - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ. 88

प्रयोगवादी काव्य में सत्य की खोज एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है । अज्ञेय की राय में प्रतीक सत्यान्वेषण का साधन है । इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है - "वैज्ञानिक सागर की गहराई नापने के लिए रस्सी डालता है, या किरणों की प्रतिध्वनि का समय कूतता है । वह एक प्रकार का ज्ञान है । वह प्रतीक द्वारा सत्य को जानता है - सत्य के अथाह सागर में वह प्रतीक रूपी कंकड फेंककर उसकी थाह का अनुमान करता है । यदि हम सागर को हमारे जाने हुए सब कुछ का प्रतीक मान ले, तो मछली उस प्रतीक का प्रतीक हो जाती है जिसके कवि सत्य का अन्वेषण करता है ।"[1] आज के परिवेश के लिए नवीन भावबोध की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक अनिवार्य भी है । प्रयोगवादी कवि के समक्ष नवीन परिस्थितियों और नवीन संदर्भों में परिवर्तित स्थापनाओं नैतिक मर्यादाओं, आस्थाओं जटिल भावबोध की अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रतीकों की सर्जना अनिवार्य हो गयी और उसने अपने नवीन प्रयोगों की अवतारणा बड़े मनोयोग से कर भी ली ।[2]

प्रयोगवादी काव्यधारा में अज्ञेय ने ही सब से अधिक प्रतीकों का प्रयोग किया है । "नदी के द्वीप" अज्ञेय की सब से श्रेष्ठ प्रतीकात्मक कविता है । इसमें द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है और नदी समाज की । किन्तु अस्तित्व संकट के बोध से यह द्वीप रेत बन जाना नहीं चाहता यानी वह स्थिरता ही चाहता है । कवि ने इसे प्रतीकात्मकता के साथ चित्रित किया है -

---

1. अज्ञेय - आत्मनेपद - पृ. 45
2. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 287

किन्तु हम है द्वीप । हम धारा नहीं है
स्थिर समर्पण है हमारा । हम सदा से द्वीप है स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं । क्योंकि बहना रेत होना है ।
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं ।
पैर उखड़ेंगे । प्लवन होगा । ढहेंगे । सहेंगे । बह जायेंगे ।[1]

अज्ञेय पर फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धान्त का प्रभाव पड़ा है । फ्रायड की दृष्टि में स्वप्न दमित इच्छाओं की प्रतीकात्मक या छद्म अभिव्यक्तियाँ हैं । उन्होंने स्वप्नों की काममूलक व्याख्या करके उनके मूल में इच्छापूर्ति की स्थापना की । परन्तु स्वप्न और प्रतीकार्थ कभी कभी निरर्थक ही लगते हैं ।[2] अज्ञेय के सामने सामाजिक वर्जनाओं का दबाव है । व्यक्ति आधुनिकता और परंपरा के बीच त्रिशंकु सा लटका हुआ है । किन्तु आन्तरिक दबावों का भी वह शिकार हो जाता है । उनके अनुसार आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति यौन वर्जनाओं का पुंज है । उसका मन यौन वर्जनाओं से लादा हुआ है । यानी उसकी सौंदर्य चेतना भी यौन प्रतीकार्थ रखती है ।[3] अज्ञेय ने इसे स्पष्ट करने के लिए कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं -

झर चुका फूल फिर
उडा डाल की ओर-अरे ।
तितली ।[4]

---

1. अज्ञेय - "हरी घास पर क्षण भर" पूर्वा - पृ. 251
2. डा. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 82
3. अज्ञेय - तारसप्तक - पृ. 276
4. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 111

कवि का एक दूसरा प्रतीक इस प्रकार है -

सो रहा है झोंप अंधियाला
नदी की जांघ पर
डाह से सिहरी हुई यह चांदनी
चोर पैरों से उझककर
झांक जाती है ।[1]

अज्ञेय ने सौंदर्य की अभिव्यक्ति के लिए यौन वर्जनाओं को प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है । काले मेघ और भूमि के मिलन का चित्र प्रस्तुत करते हुए अपने कुंठित मन को ही उन्होंने प्रस्पष्ट कर दिया है -

घिर गया नभ; उमड आये मेघ काले
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका सा
विशद श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष -
वज्र-सा ; यदि तडित से झुलसा हुआ सा ।
आह । मेरा श्वास है उत्तप्त -
धमनियों में उमड आई है लहू की धार -
प्यार है अभिशप्त -
तुम कहाँ हो नारि ?[2]

प्रयोगवादी कविता में यौन सम्बन्धी प्रतीकों के प्रयोगों पर आलोचना करते हुए श्री मुरारीलाल शर्मा ने लिखा है -"इन प्रतीकों के प्रयोग का

---

1. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 48
2. अज्ञेय - "सावन मेघ" तारसप्तक - पृ. 282-283

कारण यह है कि आज की वर्जनाएँ इतनी कठोर है कि चेतन क्षणों में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन असंभव सा हो जाता है और उनकी पूर्ति या तो वह स्वप्नजगत में या कलाजगत में करता है ।"[1]

अज्ञेय ने नागरिक को साँप का प्रतीक माना है । "साँप" उस तथा कथित सभ्य नागरिक का प्रतीक है जो चुपके से डँस लेता है ।

साँप !
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया ।
एक बात पूछूँ - (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना -
विष कहाँ पाया ?[2]

मछली अज्ञेय की प्रिय प्रतीक है । मछली व्यक्ति को और पानी समाज का प्रतीक है । व्यक्ति के समाज के बन्धनों के परे जाने की तड़प मछली के माध्यम से स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है -

उछली मछली
मानो पानी का अन्तरंग ही
काँप गया हो ।[3]

असफल प्रेम की प्रतीक है एक "उदास साँझ" कविता ।

शून्य गलियारों की उदासी
गोवों में पीली मन्द उजास

---

1. मुरारीलाल शर्मा "सुरस" - हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - पृ. 88
2. अज्ञेय - "साँप" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 29
3. अज्ञेय - "मछली" अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 108

स्वयं मूर्छा सी ।
थकी हारी साँसें, बासी ।[1]

अज्ञेय ने अन्धेरे घर को प्रिया की स्मृति के प्रतीक के रूप में अंकित किया है -

अन्धेरे अकेले घर में
अंधेरी अकेली रात
तुम्हीं से लुक-छिपकर
आज न जाने कितने दिन बाद
तुमसे मेरी मुलाकात ।[2]

सागर और मछली समष्टि और व्यष्टि के प्रतीक है । सागर मछली को सभी दिशाओं में घेरता रहता है । लेकिन मछली में जिजीविषा है इसलिए वह तड़पती है छटपटाती है, हाँफती है । अज्ञेय ने इस पर लिखा है -

अर्थ हमारा
जितना है, सागर में नहीं
हमारी मछली में हैं
सभी दिशा में सागर जिसको घेर रहा है ।[3]

यानी मुक्त और स्वतंत्रता की लालसा लेकर वह उछलती है, ऐंठती है ।

स्वतंत्रता का प्रतीकार्थ रखनेवाली कविता में व्यक्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए कवि उद्विग्न हैं -

---

1. अज्ञेय - "एक उदास साँझ" आँगन के पार द्वार - पृ. 23
2. अज्ञेय -"अंधेरे अकेले घर में" आँगन के पार द्वार - पृ. 28
3. अज्ञेय - अरी ओ करूणा प्रभामय - पृ. 168

अपनी हर साँस के साथ
पनपते इस विश्वास के साथ
कि हर दूसरे की हर साँस को
हम दिला सकेंगे और अधिक सजगता
अनाकुल, उन्मुक्ति और गहरा उल्लास ।[1]

इसी प्रकार हारिल भी दूसरा प्रतीक है । उसमें अस्तित्व की खोज है । हारिल पक्षी में आकाश की ऊँचाइयों पर उडने की आतुरता है किन्तु वह असमर्थ हो जाता है क्योंकि चारों ओर आसमान घेर रहा है - अपने अस्तित्व की सुरक्षा का बोध उसमें विद्यमान है -

जिसे दसों दिशाओं में आकाश घेर रहा है
काँप न यद्यपि दसों दिशा में
तुझे शून्य नभ घेर रहा है ।[2]

यह "द्वीप अकेला" में दीप अहंवादी व्यक्ति और पंक्ति समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं - कवि की अस्मिता का प्रतीक है दीप । उसे समाजोन्मुखी बनाने के लिए कवि अपने को समर्पित कर देता है -

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो ।[3]

"बावरा अहेरी" में "अहेरी" सूर्य, "खंडहर" टूटे अन्तस् तथा ऊनी किरण के प्रतीक है । कवि की इच्छा है कि ये किरणें उनके अन्तराल के अंधकार को

---

1. अज्ञेय - कितनी नावों में कितनी बार - पृ. 3।
2. अज्ञेय - पूर्वा - पृ. 125
3. अज्ञेय - बावरा अहेरी - पृ. 62

भेद करके उसे प्रकाशित कर दे -

भोर का बावरा अहेरी

× × × ×

ले मैं खोल देता हूँ कपाट सारे

मेरे इस खण्डहर की शिरा शिरा छेद दे

आलोक की अनी से अपनी ।[1]

प्रयोगवादी कवियों ने काव्य सौंदर्य बढाने के लिए दार्शनिक प्रतीक भी प्रयुक्त किये हैं । ज़्यादातर मसलना अज्ञेय की कविता देखिए -

तारे दूर हैं, बादल है चंचल झट से घेर लेते हैं ।

इसी भ्रम में हम इस गहरी सचाई से मुँह फेर लेते हैं

कि तारे स्पर्श से परे हैं

ओझल हो, पर हीरे से वहीं पर धरे हैं,

और वज्र से अमिट हैं लेखे जो उन्होंने हमारे हृत्पट पर उकेरे हैं ।[2]

"सोन मछली" अस्तित्व सुरक्षा की प्रतीक है । उसमें जिजीविषा है इसलिए वह हाँफती है और उछलती है -

हम निहारते रूप

काँच के पीछे

हाँप रही है मछली

रूप-तृषा भी रूप-तृषा भी

{और काँच के पीछे}

है जिजीविषा ।[3]

---

1. अज्ञेय - बावरा अहेरी - पृ. 16-17

2. अज्ञेय - "घुमडन के बाद" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 51

3. अज्ञेय - "सोन मछली" अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 140

अज्ञेय के दार्शनिक प्रतीकों में "मैं ने देखा एक बूँद" बहुत विख्यात कविता है। कवि की दार्शनिक विचारधारा की प्रतीक है यह उछली हुई बूँद। कवि ने लिखा है -

मैं ने देखा
एक बूँद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंगी गई क्षण भर
ढलते सूरज की आग से।[1]

मुक्तिबोध ने भय और शंका की मनोवृत्ति का चित्रण वासुदेव, कृष्ण, कंस, आदि पौराणिक प्रतीकों के माध्यम से किया है -

जाने कितने कारावासी वासुदेव
स्वयं अपने कर में, शिशु आत्मज ले
बरसाती रातों में निकले,
× × × ×
जाने किसके डर स्थानान्तरित कर रहे वे
जीवन के आत्मज सत्यों को
किस महाकंस से भय खाकर गहरा गहरा[2]

प्रत्येक व्यक्ति को मुक्तिबोध ने मानव के रूप में देखना चाहा -

इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर
विश्वास करना चाहता हूँ।[3]

क्योंकि मनु को सृष्टि का प्रथम पुरुष माना जाता है और कालान्तर में उनका पुत्र मानव कहलाया।

---

1. अज्ञेय - "मैं ने देखा एक बूँद" अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 140
2. मुक्तिबोध - "डूबता चाँद कब डूबेगा" चाँद का मुँह टेढा है - पृ. 44
3. मुक्तिबोध - "दूर तारा" तारसप्तक - पृ. 46

धार्मिक प्रतीक भी प्रयोगवादी कविता में द्रष्टव्य हैं । जैसे -

मैं अपने ही नहीं तुम्हारे भी सलीब का वाहक हूँ
जिसके आसपास तुम्हारे प्रेत मँडराते हैं ।[1]

सलीब ईसा की दर्दनाक पीडा और मृत्यु से संबंधित है । ईसा को धार्मिक प्रतिष्ठा के कारण सलीब धार्मिक प्रतीक की हैसियत पा लेती है ।

ऐतिहासिक प्रतीकों का प्रयोग भी प्रयोगवादी काव्य में हुआ है । चंगेजखाँ अपने अन्याय और बर्बरता के लिए कुख्यात है । भारतीय इतिहास के इस चरित्र को कवि ने ऐतिहासिक प्रतीक माना है -

आदम का पुत्र बहुत
भटका अंधेरे में
चंगेजी न्यायों के
खून भर घेरों में[2]

जैसे ऊपर सूचित किया गया कि प्रयोगवादी कवियों में सबसे अधिक प्रतीकों का प्रयोग अज्ञेय ने किया है । उनके द्वारा संपादित पत्रिका का नाम तक "प्रतीक" था । इनके राजनैतिक प्रतीक भी विद्यमान है । वर्ग और समाज के प्रति विरोध व विद्रोह व्यक्त करने के लिए कवियों ने और भी माध्यमों को प्रतीकों के रूप में प्रयुक्त किया है -

निकट गली हैं

---

1. अज्ञेय - "मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 36
2. गिरिजाकुमार माथुर - "युगारंभ" धूप के धान - पृ. 23

किसी निष्करुण जन से बिन कारण पदाक्रान्त
पिल्ले की करुण रिरियाहट
× × × ×
मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता [1]

वैज्ञानिक प्रतीकों का प्रयोग भी प्रयोगवादी कविता में मिलता है । यान्त्रिक युग की मुसीबतों को झेलते हुए कवियों ने जिन सत्यों को रूपायित किया उनकी अभिव्यक्ति में बिलकुल सचसई एवं यथार्थबोध है । भारत भूषण अग्रवाल ने अपने को वैज्ञानिकता का उपकरण नहीं माना है -

मैं मशीन युग का मात्र छोटा यंत्र
योग नहीं ;
हो तो उपयोग भले मेरा हो । [2]

बर्बरता और तानाशाही का प्रतीक है हिटलर । उसने अनेक देशों की संस्कृतियों को कुचल दिया था । शान्ति और मानवता की महत्वाकांक्षा रखनेवाले आज के कवि कहते हैं -

राइन के जलकंठों में गेटे ने गाया
और हिटलरी फौजी बूटों ने कुचला डेन्यूब लहर को
और संगीनों से कभी नहीं गेहूँ उगता है [3]

प्रयोगवादी कवियों ने इस प्रकार प्रतीकों की भरमार से इस काव्यधारा को संपन्न एवं पुष्कल बनाया है ।

---

1. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 164-165
2. भारत भूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन - पृ. 60
3. नरेशकुमार मेहता - "समय देवता" दूसरा सप्तक - पृ. 129

बिंब योजना

बिम्ब दरअसल शब्दचित्र है जो कविता को आकर्षक एवं प्रभावशाली बनाता है । कम शब्दों के माध्यम से बहुत कुछ अभिव्यक्त करने का माध्यम भी है बिम्ब । एक हद तक बिम्ब अमूर्त भावों को मूर्त बनाने का विधान भी है । बिम्बों के प्रयोग से कविता में शब्दों की फिजूलखर्ची नहीं होती है, यहाँ तक कि कविता का आकार तक बदल जाता है । प्रभाकर श्रोत्रिय के मुताबिक बिम्ब अन्तर्वेग और भावावेश से संचालित शब्दचित्र है और काव्यभाषा की तीसरी आँख है ।[1] कवि केदारनाथ सिंह तो कविता में बिम्बविधान को प्रमुख स्थान देने के पक्ष में हैं । उन्होंने लिखा है कि बिम्बविधान का संबंध जितना काव्य की विषयवस्तु से होता है उतना ही उसके रूप से भी । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और दीप्त ।[2]

बिम्ब प्रयोगवादी कविता के शिल्प का अभिन्न अंग है । प्रयोगवादी कवि जीवन के जटिल एवं सूक्ष्मतम भावों से जूझते रहे थे । इसलिए उन सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करना अनिवार्य भी हो गया था । अतः प्रयोगवादी काव्य में बिम्ब अनायास ही अवतरित है ।

प्रयोगवादी कवियों में अज्ञेय की कविता में बिम्बों का अधिकतर प्रयोग हुआ है । "पहाडी यात्रा" कविता में जो दृश्य अंकित किया गया है उसमें बिम्बों का सही और संश्लिष्ट प्रयोग मिलता है -

---

1. प्रभाकर श्रोत्रिय - कविता की तीसरी आँख - पृ. 23
2. केदारनाथ सिंह - तीसरा सप्तक वक्तव्य - पृ. 114

मेरे घोडे की टाप
चौखटा जडती जाती है
आगे के नदी-व्योम, घाटी पर्वत के आस-पास
में एक चित्र में
लिखा गया सा आगे बढता जाता हूँ ।[1]

बिम्ब का दायित्व शब्दार्थ के आयामों और विकसनशीलता को बनाये रखना है । निम्न पंक्तियों में यह द्रष्टव्य है -

मेरे छोटे घर कुटीर का दिया
तुम्हारे मन्दिर के विस्तृत आँगन में
सहम सा रख दिया गया ।[2]

नेमिचन्द्र जैन की "डूबती संध्या" में डूबती सन्ध्या के सार्थक बिंबों की अभिव्यक्ति हुई है -

डूबती संध्या;
ग्रीष्म की तपती दुपहरी, प्रबल झंझावात के पश्चात्
सुनसान शान्त उदास सन्ध्या ।
विरल सरि का चिर अनावृत गात
जो किसी की आँख के अभिराम जादू के परस से
हो उठा है लाल
ऐसा गात
किस अनागत की प्रतीक्षा में खुला है ?[3]

---

1. अज्ञेय - "पहाडी यात्रा" अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 64
2. अज्ञेय - "दूज का चाँद" आँगन के पार द्वार - पृ. 14
3. नेमिचन्द्र जैन - "डूबती संध्या" तारसप्तक - पृ. 12

मुक्तिबोध की रचना "आत्मा के मित्र मेरे" में स्वप्न बिम्ब का सार्थक प्रयोग उपलब्ध है -

उस जलधि की श्याम लहरों पर जुड़ा आता
सघनतम श्वेत स्वर्गिक फेन, चंचल फेन ।[1]

प्रभाकर माचवे की कविता में मेघाकुल निशि का बिम्ब इस प्रकार है -

अमित असित धूमिल मेघों से भरा हुआ नभ का पड़ाव[2]

गिरिजाकुमार माथुर की "चाँदनी बिखरी हुई" में चाँदनी के बिम्ब विविध रूपों में अंकित किये गये हैं । एक बिम्ब में लोक जीवन की सोंधी सुगन्ध आती है -

दूध के बुरादे से
मेह दुही चाँदनी
बासमती चावल की
देह हुई चाँदनी[3]

"जाड़ों की सुबह" कविता में कुँवर नारायण ने प्रकृति के विशेष दृश्यों के आधार पर नवीन बिम्ब को प्रस्तुत किया है जो बिलकुल दिलचस्प है -

रात कम्बल में
दुबकी उजियाली ने
धीरे से मुँह खोला,
नीड़ों में कुलबुल कर,
अलसाया - अलसाया
पहला पंछी बोला[4]

---

1. मुक्तिबोध - "आत्मा के मित्र मेरे" तारसप्तक - पृ. 44
2. प्रभाकर माचवे - "काशी की घाट पर" तारसप्तक - पृ. 209
3. गिरिजाकुमार माथुर - चाँदनी बिखरी हुई - पृ. 28
4. कुँवर नारायण - "जाड़ों की सुबह" तीसरा सप्तक - पृ. 155

अज्ञेय ने यौन परिकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए प्राकृतिक बिम्बों को ग्रहण किया है -

स्नेह से आलिप्त
बीज के भवितव्य से उत्फुल्ल
बद्ध
वासना के पंक सी फैली हुई थी
धारयित्री सत्य की निर्लज्ज, नंगी
औ समर्पित ।[1]

इसी प्रकार

सो रहा है झोंप अंधियाला
नदी की जांघ पर[2]

दो पंखुरियाँ
झरी लाल गुलाब की तकती पियासी
पिया से ऊपर झुके उस फूल को
ओंठ ज्यों ओठों तले[3]

में कवि ने यौन बिम्ब को प्रस्तुत किया है । कवि की दृष्टि है कि आज का मानव यौन वर्जनाओं से आक्रान्त है । यानी यौन बिम्बों को प्रयुक्त करके कवि ने अपनी व्यक्तिपरक विचारों की भी अभिव्यक्ति दी है ।

व्यक्ति सत्य को व्यापक सत्य बनाने के लिए प्रयोगवादी कवियों ने बिम्बों का अत्यधिक बारीकी के साथ प्रयोग किया है । बिम्ब में

---

1. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 155
2. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 48
3. वही - पृ. 24

गतिशीलता के कारण उसमें मानवीकरण का संयोजन भी हुआ है । उपमा और रूपक के माध्यम से भी कभी-कभी बिम्बयोजना की गई है -

पति सेवा रत साँझ
उचकता देख पराया चाँद
ललककर ओट हो गई ।[1]

इसमें श्रृंगारिकता का पुट है साथ ही दार्शनिकता झलक भी मिलती है । अज्ञेय ऐन्द्रिय संवेद्य बिम्ब भी कविता में प्रस्तुत किया है -

तुम्हारी देह
मुझे कनक चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गंध देता है ।[2]

ऐन्द्रिक संवेदना की अभिव्यक्ति निम्न पंक्तियों में भी मिलती है -

तुम्हारी सुधि आते ही तड़पती
ऐसी ठण्डक इन प्राणों में
ज्यों सुबह ओस गीले खेतों से आती है
मीठी हरियाली खुशबू मन्द हवाओं में ।[3]

जीवन के वास्तविकताओं को उतारने में प्रयोगवादी कलाकार सक्षम है । गिरिजाकुमार माथुर ने जीवन की मूर्त एवं सजीव तस्वीर इस प्रकार खींची है

धूप
माँ की हँसी के प्रतिबिम्ब-सी शिशु वदन मन
हुई भासित ।[4]

---

1. अज्ञेय - "पूनो की साँझ" अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 67
2. अज्ञेय -"कलगी बाजरे की" हरी घास पर क्षण भर - पृ. 57
3. गिरिजाकुमार माथुर -"लैंड स्केप" धूप के धान - पृ. 5
4. अज्ञेय - "सूर्यास्त" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 83

अमूर्त को मूर्त करने के लिए कवि मानवीय संवेदनाओं को अत्यन्त सूक्ष्म रूप में प्रस्तुत करता है । भारती ने ऐसा एक चित्र सामने रखा है -

तुम कितनी सुन्दर, लगती हो
जब तुम हो जाती हो उदास
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खण्डहर के आसपास
मदभरी चाँदनी जगती हो ।[1]

जैसे पहले भी सूचित किया गया है अज्ञेय ने इलियट की शैली को ग्रहण किया था । इसलिए उनकी बिम्बशैली में विरोधात्मक बिम्बों का समन्वय भी हुआ है -

वंचना है चाँदनी सित
झूठ वह आकाश का निरवधि, गहन विस्तार -
शिशिर की राकानिशा की शांति है निस्सार ।
x x x x x x
बाँस की टूटी हुई टट्टी, लटकती
एक खम्भे से फटी-सी ओढनी की चिन्दियाँ दो चार ।
निकटतम धँसती हुई छत, आड में निर्वेद
मूत्र सिंचित मृत्ति का के वृत्त में
तीन टांगों पर खडा, नतग्रीष,
धैर्य-धन गदहा ।[2]

प्रयोगवादी कवियों ने आधुनिक भावबोध के अनुसार टूटे खंडित बिम्बों का भी

---

1. धर्मवीर भारती - "उदास तुम" ठंडा लोहा - पृ. 7
2. अज्ञेय - "शिशिर की राका-निशा" तारसप्तक - पृ. 286

प्रयोग किया है ।

नदी की बाँक
गोरी चमक बालू की
विदा की आर्द्र लालिम
मेघ की रेखा
नीरव बलाका ।[1]

व्यक्ति को समाज की अपेक्षा महत्व देनेवाली काव्यधारा है प्रयोगवाद । व्यक्ति की महिमा को स्पष्ट करने के लिए कवियों ने बिम्बों का प्रयोग भी यत्र-तत्र किया है -

किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं हैं
स्थिर समर्पण है हमारा । हम सदा से द्वीप है स्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं हैं । क्योंकि बहना रेत होना है ।
हम बहेंगे तो रहेंगे नहीं ।[2]

कीर्ति चौधरी ने कछुए के नये बिम्ब के माध्यम से अपने अहं की अभिव्यक्ति तक की है -

यह कछुए की मेरी आत्मा
पंजे फैला
असली स्वरूप जो तुम्हें दिखाने को,
उत्सुक हो बैठी है
क्या जाने अगले क्षण की ही आहट को पा
सब कुछ अपने में फिर समेट ले अन्दर ।[3]

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणा प्रभामय - पृ. 7।
2. अज्ञेय - "हरी घास पर क्षण भर" पूर्वा - पृ. 25।
3. कीर्ति चौधरी - "प्रस्तुत" तीसरा सप्तक - पृ. 47

यों प्रयोगवादी कविता में मानवीय संवेदनाओं की सफल अभिव्यक्ति के लिए सशक्त एवं उचित बिम्बों का प्रयोग किया गया है । इनका प्रयोग इतना सहज है कि ये कविता की अंतर्वस्तु के रूप में ही अभिव्यक्त हुए हैं, जो वाकई कवियों की सर्जनात्मकता की विशिष्टता को जाहिर करता है ।

छन्दयोजना

प्रयोगवादी कवि छन्दविधान के मामले में जागरूक रहे हैं । प्रायः मुक्त छन्द का ही प्रयोग सारे प्रयोगवादी कवियों ने किया है । हिन्दी में निराला के साथ ही मुक्त छन्दों का प्रयोग शुरू हुआ था ।[1] प्रयोगवादी कवियों ने शिल्प में नवीनता लाने के लिए छन्दों को नकार दिया और तुकों को भी बिदा कर दिया । प्रयोगवादी कविता की काव्यवस्तु अत्यन्त जटिल और बौद्धिक रही है । इसलिए छन्दोबद्ध कविता में विषयानुकूल अभिव्यक्ति संभव नहीं है । यानी कविता को परंपरागत सारे बन्धनों से मुक्त कर उसे गद्य के निकट पहुँचा देने का कार्य ही प्रयोगवादियों ने किया था ।

तारसप्तक के कवियों ने मुक्तछन्द के प्रयोग पर अपना अपना मत प्रकट किया है । गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा है कि "मुक्त छन्द को मैं ने संपूर्ण विधान रचा है ।..... कवित्त के पूर्ण विरामों पर ही पंक्ति समाप्त हो, किन्तु अर्द्धविराम भी शुद्ध माने हैं ।"[2] छन्दों में नवीनता लाने का

---

1. टी.एन.मुरलीकृष्णम्मा - छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ - पृ.239
2. गिरिजाकुमार माथुर - तारसप्तक वक्तव्य - पृ.125

समर्थन प्रभाकर माचवे ने भी किया है -"छन्दोरचना के विषय में हमें नव-नवीन प्रयोग अपनाने होंगे । अन्य भाषाओं के छन्द भी हम लें । निराला द्वारा हिन्दी में लायी गयी मुक्त, विषमचरणावर्तिनी, अतुकान्त अक्षर-मात्रिक छन्द पर आश्रित तालात्मक पद्यरचना - पद्धति श्रेयस्कर है ।"[1] मुक्तछन्द का भी एक अनुशासन होता है । नियमों के परे होने पर भी वह एक छन्द ही है । गिरिजाकुमार माथुर ने मुक्तछन्द को ही पसन्द किया था -"कविता में मुक्तछन्द ही पसन्द करता हूँ ।..... मैं मुक्तछन्द में संगीतप्रधान गीत संभव कर सका हूँ जिन्हें गाते समय तुक की आवश्यकता प्रतीत ही नहीं होती ।"[2] उनकी कविता "रेडियम की छाया" अतुकान्त ही है -

सूनी आधी रात
चाँद-कटोरे की सिकुड़ी कोरों से
मन्द चाँदनी पीता लम्बा कुहरा
सिमट सिमट कर ।[3]

अज्ञेय की प्रारंभिक रचनाएँ छायावादी शैली में लिखी गयी थी पर बाद में उनका ध्यान मुक्त छन्द की ओर जाने लगा । प्रारंभिक छन्दों में लय पर ज़्यादा ध्यान रखा गया है -

बाहु मेरे घेर कर तुमको रुके रहे ।
रात की गुंजरित स्पन्दन हीनता में
निभृत सी उत्कट प्रतीक्षा में
नहीं माँगा भी तुम्हारे प्यार का संकेत ।[4]

---

1. प्रभाकर माचवे - तारसप्तक वक्तव्य - पृ. 186
2. गिरिजाकुमार माथुर - तारसप्तक वक्तव्य - पृ. 125
3. गिरिजाकुमार माथुर - "रेडियम की छाया" तारसप्तक - पृ. 130
4. अज्ञेय - "बाहु मेरे रुके रहे" तारसप्तक - पृ. 303

उनकी पंक्तियाँ छोटी होती हैं । इनके द्वारा कवि वास्तविकता को उभारने में सक्षम भी बने हैं -

हम नदी के द्वीप हैं
हम नहीं कहते कि हमको छोडकर स्रोतस्विनी बह जाय ।
वह हमें आकार देती है ।
x x x
माँ है वह । है, इसी से हम बने हैं ।[1]

परंपरागत मुक्तकों का प्रयोग भी अज्ञेय ने किया है -

एक छाप रंगों की
एक छाप ध्वनि की
एक सुख स्मृति का
एक कथा मन की ।[2]

इनके मुक्तछन्दों में भी तुकों का समावेश हुआ है जो बिलकुल नूतन एवं अतुलनीय है ।

आँखों में - चिर प्रेय
हाथों को जो - श्रेय
आत्मा में - कुछ गेय
मिट्टी को - अज्ञेय ।[3]

छायावादी शैली के गीत भी अज्ञेय की प्रारंभिक कविताओं में मिलते हैं । इसमें लय भी काफी भर दी गई है -

---

1. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 65
2. अज्ञेय - इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 73
3. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 227

कानन का सौंदर्य लूटकर
सुमन इकट्ठे करके
धो सुरभित नीहार कणों से -
आंचल में मैं भरके,
देव । आऊँगा तेरे द्वार ।
किन्तु नहीं तेरे चरणों में दूँगा वह उपहार ।[1]

प्रसाद की शैली भी अज्ञेय ने अपनायी थी -

विफले । विश्व क्षेत्र में खो जा ।
पूँजी भूते, प्रणय वेदने ।
आज विस्मृता हो जा ।[2]

प्रसाद की पलायन वृत्ति का असर अज्ञेय पर भी पड़ा है । उन्होंने उसे अपने ढंग से स्वीकार किया है -

चलो चलें
जीवनपट की धुँधली लिपि को
व्यथा नीर से धो चलें ।
x x x
विश्वम्भर में लुटकर आए, यह ममत्व भी क्यों रह जाए ।
हो ही चुके पराजित तो अब अपनापन भी खो चलें ।[3]

अज्ञेय ने जापानी छन्दों का प्रयोग भी किया है । "जापानी छन्द हाइकू, टोकोकू, जुगो, सायुई, बाशो, रेंगा {श्रृंखलित पद्य} आदि को भी कवि हिन्दी में ले आया ।"[4] अरी ओ करुणा प्रभामय की कुछ रचनाएँ जापानी छन्दों से

---

1. अज्ञेय - इत्यलम - पृ. 25
2. वही - पृ. 30
3. वही - पृ. 73
4. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 123

प्रभावित हैं । निम्न पंक्तियों में इसकी अभिव्यक्ति हुई है -

झिलमिल के आरपार
दो परछाइयाँ
बोली नहीं
लेती रही बार बार
बस अंगड़ाइयाँ जमुहाइयाँ ।[1]

"अक्षर-अर्पण" पर आधारित अपनी रचना में संपादक की हैसियत से श्री कमलकान्त बधकर शिव जायसवाल का कथन है कि माचवे की कविताओं में विषयगत विविधता है । माचवे ने छन्दोबद्ध और मुक्त छन्द दोनों पद्धतियों का अपनी काव्यरचना में उपयोग किया है ।[2]

प्रयोगवादी कवियों ने छन्द के नये नये आयामों की खोज भी की थी । छन्द उनके लिए कभी भी बन्धन नहीं रहे । अज्ञेय ने इस दृष्टि को मन में रखकर लिखा है -

छन्द है यह फूल, पत्ती प्रास ।
सभी कुछ में हैं नियम की साँस ।
कौन सा वह अर्थ जिसकी अलंकृति कर नहीं सकती,
यही पैरों तलों की घास ?
समर्पण लय, कर्म है संगीत

---

1. अज्ञेय - अरी ओ करुणाप्रभामय - पृ. 110
2. अक्षर अर्पण - सं. कमलकांत बधकर शिव जायसवाल - पृ. 39

टेक करुणा - सजग मानव-प्रीति ।
यदि न खोजो - अहं की यति है । स्वयं रणरणित होते
रहो, मेरे मीत ?[1]

गिरिजाकुमार माथुर ने एक संगीतमय मुक्तछन्द लिखकर छन्द का एक निखरा रूप दर्शाया है -

आज हैं केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली-सी
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह-सी
बोलती आँखों में
पहिले वसन्त के फूल का रंग है ।
गोरे कपोलों में हौले से आ जाती
पहिले ही पहिले के
रंगीन चुम्बन की सी ललाई ।
आज हैं केसर रंग रंगे ।
जिनके विभिन्न रंगों में है रंग गई
पूनों की चन्दन चाँदनी ।[2]

कभी कभी विरामहीन पंक्तियों को लिखकर उन्होंने नवीनता की खोज भी की है -

बादल बरसै मूसलधार

---

1. अज्ञेय -"छन्द है यह फूल" हरी घास पर क्षण भर - पृ. 67
2. गिरिजाकुमार माथुर - "आज हैं केसर रंग रंगे वन" तारसप्तक - पृ. 127

चावाहा आमों के नीचे खडा किसी को रहा पुकार
एक रस जीवन पावस अपरम्पार
मेघों का उस क्षितिज कूल तक पता न पाऊँ
कि कैसा घुलमिल है संसार
एक धुंध है प्यार ।[1]

किन्तु माचवे ने भावों के अनुसार विराम चिह्नों का सटीक प्रयोग किया है -

वर्षा
जिसने कर्षक को आकर्षा ।
स्वस्थ, मस्त बूँदों ने आकर,
विपद्ग्रस्त धरती को स्पर्शा[2]

भारतभूषण अग्रवाल ने मुक्तछन्द पर बल देते हुए लिखा है कि भाषा की शक्तिहीनता के कारण कोई भी वाणी ओठों पर टिक नहीं सकती -

भाषा सशक्त भावों को व्यक्त न कर पाई
वाणी कायर ओठों पर आकर लौट गई
मैं चाह रहा हूँ, किन्तु न कह पाता कुछ भी
यह अनुभव बिलकुल नया, प्राण यह पीर नई[3]

यद्यपि प्रयोगवादियों ने छन्द के बन्धनों को तोडना चाहा फिर भी छन्दोबद्ध कविताओं की रचना उन्होंने की है । भवानी प्रसाद मिश्र की निम्न पंक्तियाँ लोकगीतों की तर्ज पर रची हैं -

पीके फूटे आज प्यार के पानी बरसा री
हरियाली छा गई, हमारे सावन सरसा री ।

---

1. प्रभाकर माचवे - "बादल बरसै मूसलधार" तारसप्तक - पृ. 148
2. प्रभाकर माचवे - "वृष्टि" तारसप्तक - पृ. 138
3. भारतभूषण अग्रवाल - ओ अप्रस्तुत मन - पृ. 13

बादल आए आसमान में धरती फूली री,
अरी सुहागिन भरी माँग में, भूली री,
बिजली चमकी भाग रही री, दादुर बोले री,
अन्ध प्राण ही बाही, उडे पंछी अनमोले री ।[1]

फिर भी यह बात स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों ने छन्दों के बन्धन को तोडकर कविता में मुक्तछन्द शैली को अपनाने में ज्यादा रुचि ली है । रूढी और परंपरा के बदले नवीनता के लिए इन कवियों ने प्रचलित छन्दयोजना को नकारते हुए कविता में नए सौंदर्यबोध लाने का अथक प्रयास किया था । यों काव्य के ढाँचे को परिवर्तित करते हुए व्यक्तिवादी चेतना की कारगर अभिव्यक्ति में कवि सक्षम भी हुए थे ।

मुक्तासंग

अंग्रेज़ी के फ्री एसोसिएशन का हिन्दी रूपान्तर है मुक्तासंग । फ्रायड ने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है कि मुक्तासंग एक अद्भुत तकनीक है - मानसोपचार की और काव्य-उपचार की भी ।[2] इसके अनुसार रोगी एक विशेष प्रभाव में आकर चिकित्सक के सामने अपने मन के सभी विचारों अथवा भावों को व्यक्त करता है और चिकित्सक उसकी अवदमित इच्छाओं और कुंठाओं का ज्ञान प्राप्त करता है ।[3] प्रयोगवाद में भी अपनी विच्छिन्न

---

1. भवानीप्रसाद मिश्र - दूसरा सप्तक - पृ. 17
2. डॉ. सुभाष चौधरी - मुक्तासंग और नयी कविता - पृ. 9
3. डॉ. रमाशंकर तिवारी - प्रयोवादी काव्यधारा - पृ. 419

अनुभूतियों के चित्रण करने की प्रवृत्ति है । रचनाकार की इस प्रवृत्ति से व्यक्तिचेतना प्रवाहित हो जाती है । व्यक्ति की मानसिक ग्रन्थियों के उद्घाटन करने की इस शैली को चेतनाप्रवाह शैली कहते हैं ।[1] वैयक्तिक चेतना को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयोगवादी कवियों ने इस शैली को अनिवार्य माना था ।

कवि दिवास्वप्नरत मनुष्य के समान घूमता फिरता है और फिर अचेतन निद्रावस्था में सम्मोहित सा स्वप्नलोक में भी विचरता रहता है । इसलिए वह लगातार बोलकर भी काव्यसृजन कर सकता है । यानी सर्जक चाहे जागता हो या सोता हो उसकी चेतना प्रवाहमान रहती है । कभी कुछ वस्तुओं को देखकर या स्पर्श करके अपनी पिछली स्मृतियों के लोक में विचरण करता है और कितने ही चित्र उसके मस्तिष्क में अक्रमिक रूप से आते और बिखर जाते हैं ।[2] इन चित्रों को अक्रमिक रूप से अंकित करने की प्रवृत्ति चेतनाप्रवाही शैली में होती है । अज्ञेय की कविताओं में इसकी बारीकी अभिव्यक्ति मिलती है -

भोर वेला - नदी तट घंटियों का नाद
चोट खाकर जग उठा सोया हुआ अवसाद
नहीं, मुझको नहीं अपने दर्द का अभिमान
मानता हूँ मैं पराजय है तुम्हारी याद ।[3]

गिरिजाकुमार माथुर की "चूडी का टुकडा" कविता में भी सुप्त पडी चेतना का प्रवाह होता है । जब कवि को चूडी का एक टुकडा किसी मैले कपडे की

---

1. डॉ. सुभाष चौधरी - मुक्तासंग और नयी कविता - पृ. 9
2. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 96
3. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 17

सिलवट पर पडा हुआ दिखाई देता है तो मन में मिलन रात की कई स्मृतियाँ एक साथ उमडकर आती हैं । एक अजस्र प्रवाह के समान बीती बातें निसृत होती हैं । पाठक भी इन स्मृतियों की अनुभूतियों में लीन हो जाती हैं -

आज अचानक सूनी सी सन्ध्या में
जब मैं यों ही मैले कपडे देख रहा था
किसी काम में जी बहलाने
एक सिलक के कुर्ते की सिलवट में लिपटा
गिरा रेशमी चूडी का छोटा-सा टुकडा
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिने थीं
रंग भरी उस मिलन रात में ।
मैं वैसा का वैसा ही रह गया सोचता
पिछली बातें
दूज-कोर-से उस टुकडे पर
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तसवीरें
सेज सुनहली
कसे हुए बन्धन में चूडी का झर जाना ।
निकल गयी सपने जैसी वे रातें
याद दिलाने रहा सुहाग-भरा यह टुकडा ।[1]

मुक्तासंग का प्रभाव अज्ञेय पर भी पडा था । कवि की मानसिक ग्रन्थियों के खुलने से नवीन ग्रन्थियाँ तैयार हो जाती हैं । इस अवस्था में लिखी गयी कवितायें पढने से सन्देह होगा कि किसी ने नींद में ही कुछ न

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - "चूडी का एक टुकडा" तारसप्तक - पृ. 129

कुछ बडबडाया हो । "चार का गजर कहीं खडका" बिखरे स्वप्नों का एक मुक्तासंग है ।

चार का गजर कहीं खडका -
रात में उलट गयी नींद मेरी सहसा -
छोटे छोटे, बिखेर से, शुभ्र शुभ्र खण्डों बीच द्रुतपद
भागा जा रहा है चाँद ;
जगा हूँ मैं एक स्वप्न देखता ।
जाने कौन स्थान है, मैं खडा एक मंच पर
एक हाथ ऊँचा किये । भाषण के बीच में
रुककर नीचे देखता हूँ । जुटी भीड को
जिसमें मैं एक चित्र थामे हूँ ;
और मुग्ध-नेत्र चित्र को देखता -[1]

अज्ञेय का "कंकरीट का पोर्च" में भी उनकी असम्बद्ध स्मृतिपुंजों की अभिव्यंजना हुई है । रघुवीर सहाय की कविता "अगर मैं तोता होता तो" सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की "गर्म हवाएँ" जैसी कविताओं में भी मुक्तासंग का शिल्प विद्यमान है।

अनुक्रमिक भावनाप्रवाह

मस्तिष्क में असम्बद्ध भावनाओं का एक ही क्रम में बढना ही अनुक्रमिक भावनाप्रवाह है ।[2] इससे काव्य में दुरूहता आ जाती है । अज्ञेय और मुक्तिबोध की रचनाओं में यह द्रष्टव्य है । "देहवल्ली" कविता में अज्ञेय ने लिखा है ।

---

1. अज्ञेय - इत्यलम् - पृ. 176
2. पवनकुमार मिश्र - प्रयोगवादी काव्य - पृ. 278

देह -
वल्ली
रूप को
एक बार बेझिझक देख लो ।
x x x x
भव्य बीज रूपाकारों का
निर्गन्धा इन किंशुका
गन्ध के उपभोक्ता किन्तु कहें तो
कब हम वसन्त के उन्मेष को
नहीं उस एक संकेत से पहचान सके ?[1]

मुक्तिबोध ने भी ऐसी कवितायें लिखी है जिसकी वजह कविता दुरूह बन गयी है ।

वे गगन दीन
वे रसिक रूग्ण
पुंसत्वहीन वेश्या-विहार
इसका प्रकाश
जग के विशाल
शव का सफेद परिधान साफ ।[2]

प्रसंग गर्भत्व

कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थ भरने के लिए प्रसंग गर्भत्व का उपयोग होता है ।[3] इसमें भी दुरूहता होती है और काव्यार्थ ग्रहण

---

1. अज्ञेय - "देहवल्ली" बावरा अहेरी - पृ. 36
2. मुक्तिबोध -"विहार" तारसप्तक - पृ. 59
3. शैल सिन्हा - प्रयोगवाद और अज्ञेय - पृ. 100

करने के लिए पौराणिक प्रसंगों का जानना ज़रूरी भी होता है । अज्ञेय के ही कई उदाहरण हमें मिलते हैं ।

जाओ
अब रोओ ।
x x x
बार बार
निषिद्ध फल खाओ ।[1]

इसमें निषिद्ध फल बाइबिल में ईश्वर द्वारा मना किये गये निषिद्ध फल की सूचना देता है । "सलीब" को लेकर अज्ञेय ने लिखा -

"मैं अपने ही नहीं तुम्हारे सलीब का वाहक हूँ ।"[2]

सलीब वेदना का प्रतीक ही नहीं, ईसा मसीहा और उनके अपूर्व बलिदान की भी याद दिलाता है ।

रामायण लिखने के लिए वाल्मीकि को जिस क्रौंचपक्षी की वेदना प्रेरणास्रोत रही थी उसी घटना के आधार पर अज्ञेय ने नए भावबोध उभारने का प्रयास किया है -

क्रौंच बैठा हो कभी वल्मीक पर
तो मत समझ
वह अनुष्टुप बाँचता है संगिनी के स्मरण के
जान ले, वह दीमकों की टोह में है ।[3]

---

1. अज्ञेय - "आदम को एक पुरानी ईश्वर का शाप" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 54
2. अज्ञेय -"मैं तुम्हारा प्रतिभू हूँ" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 36
3. अज्ञेय - "भाहीवाल से" पूर्वा - पृ. 23।

व्यंग्यात्मकता

अक्सर व्यक्ति के विद्रोह को अभिव्यक्त करने के लिए सूक्ष्म व्यंग्य शैली का प्रयोग भी किया जाता है । अभिजात्यवर्ग के प्रति रोष तथा व्यक्ति और समाज के सड़े गले पक्षों को लेकर अज्ञेय ने तीखे व्यंग्य किये हैं ।

अल्ला रे अल्ला
होता न मनुष्य मैं होता करमल्ला ।
रूखे कर्म जीवन से उलझा न पल्ला ।
चाहता न नाम कुछ
माँगता न दाम कुछ
करता न काम कुछ, बैठता निठल्ला
अल्ला रे अल्ला ।[1]

नये कवियों का अनर्गल प्रलाप सुनकर कवि अपना खीझ यों प्रकट करते है -

रेंक रे रेंक
गधे
रेंक रे रेंक
कुटिया के पीछे का
आँगन डेढ बित्ते का
छेंक ले छेंक
गधे
रेंक रे रेंक ।[2]

गिरिजाकुमार माथुर की "गीतिका" में ब्रिटिश शासकों की शासन-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य मिलता है -

---

1. अज्ञेय - हरी घास पर क्षण भर - पृ. 42
2. अज्ञेय - "रेंक रे रेंक" इन्द्रधनु रौंदे हुए थे - पृ. 41

इनसानों को गीले कपड़े-सा निचोड़कर,
स्तम्भमुखी शक्तियाँ हाथ ले
कर राष्ट्रीयकरण विचारों के सक्टर का,
काम सोचने का भी है ले लिया राज्य ने ।[1]

वर्तमान शासन व्यवस्था के प्रति भी कवियों काक शिकायत होती है । निम्न पंक्तियों में इसकी खुली व्यंजना हुई है -

और यह भी पढ़ाया जायगा
कि एक और राज्य था
जो संसार भर में शांति का मंत्र फूँकता रहा
पर जिसे अपने ही घर में
भाई भाई के नीच दीवार खड़ी करनी पड़ी
जो हर पराधीन देश की मुक्ति में लगा रहता था
पर जिसके अपने ही अंग पराये बंधन में जकड़े रहे ।[2]

"कवि गाता है" में यथार्थ लोक से हटकर कल्पना लोक में विचरण करते कलाकारों पर व्यंग्य कसा हुआ है -

वह कलाकार,
क्या परवा, उसको एक ओर भूखे मरते लाखों प्राणी,
वह दिव्य दृष्टि से देख रहा, उसकी तो युग-युग की वाणी[3]

मदन वात्स्यायन ने भी शासन की शिथिलता एवं निष्क्रियता पर आक्रोश के साथ व्यंग्य भरी आवाज़ उठायी है -

बधिर प्रान्तीयता, जातीयता अंधी,
बुभुक्षित भ्रष्टता, सहमी हुई ताकत,
सबों पर फाइलों का छत्र ।[4]

---

1. गिरिजाकुमार माथुर - "गीतिका" तारसप्तक - पृ. 216-217
2. भारतभूषण अग्रवाल - "आनेवाले से एक सवाल" तारसप्तक - पृ. 112
3. नेमिचन्द्रजैन - "कवि गाता है" तारसप्तक - पृ. 54
4. मदन वात्स्यायन - "मिथिला में बाढ़" तीसरा सप्तक - पृ. 108-109

आज़ादी की चाह होने पर भी उसके लिए अपने सुखों के त्याग करने के लिए जो तैयार नहीं थे ऐसे देशोद्धारकों पर तीखा व्यंग्य करते हुए माचवे ने लिखा है -

मृदुल नींद नीड की गोद में
और परों की सेज नरम,
बाहर झुलसी हवा बह रही
रह-रह कर लू तेज गरम,
बाहर अर्धनग्न पीडा
भीतर क्रीडा लबरेज हरम,
करुणा के आँगन में नेता,
दे थोडी-सी भेज शरम ।[1]

हिन्दुस्तानी एवं पाकिस्तानी देशभक्तों की निष्क्रियता पर व्यंग्य करते हुए रामविलास शर्मा ने यों लिखा है -

हिन्दुस्तान हमारा है,
प्राणों से भी प्यारा है,
इसकी रक्षा कौन करें ?
सेंत सेंत में कौर मरे ?
पाकिस्तान हमारा है
प्राणों से भी प्यारा है
इसकी रक्षा कौन करें ?
बैठो हाथ में हाथ धरे ?
गिरने दो जापानी बम ।
सत्यं शिवं सुन्दरम् ।[2]

---

1. प्रभाकर माचवे - "देशोद्धारकों से" तारसप्तक - पृ. 141
2. रामविलास शर्मा - "सत्यं शिवं सुन्दरम्" तारसप्तक - पृ. 246-247

यह बात स्पष्ट है कि राजनीतिक अराजकता के कारण ही कवियों की प्रतिक्रिया व्यंग्यात्मक शैली में हुई है । इस के ज़रिये प्रयोगवादी कवियों ने अपनी झुंझलाहट की अभिव्यक्ति की है साथ ही सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह भी प्रकट किया है ।

निष्कर्षत: शिल्पविधान के क्षेत्र में कवियों ने नूतन चेतना का विकास किया है । यद्यपि सुगठित शिल्प पक्ष काव्य का अभिन्न एवं परंपरागत अंग रहा है । फिर भी उसे अपनी संवेदनाओं के अनुकूल विधान करने की प्रक्रिया में प्रयोगवादी कवियों ने सफलता हासिल की है । आम तौर पर प्रयोगवादी शिल्पपक्ष सरल और सुबोध है । यद्यपि कतिपय संदर्भों में अनुक्रमिक भावना प्रवाह शैली तथा प्रसंग गर्भत्व आदि की वजह थोडी दुरूहता भी आ गई है ।

पाँचवाँ अध्याय

उपसंहार - प्रयोगवादी कविता में व्यक्तिवादी चेतना - मूल्यांकन

आधुनिक युग की बहुचर्चित एवं प्रतिष्ठित दर्शन हैं व्यक्तिवाद। यह समाज की अपेक्षा व्यक्ति को ज़्यादातर महत्व देनेवाला दर्शन है। इसने व्यक्ति की वरीयता एवं श्रेष्ठता पर सर्वाधिक बल दिया है। व्यक्ति स्वतंत्रता इसका मूल स्वर है। एक हद तक इस दर्शन ने व्यक्ति की अलग पहचान का आदर्श भी प्रस्तुत किया है।

युगों से सामाजिक नियमों और आचार विचारों के सांकल में जकडी हुई व्यक्तिसत्ता को स्वतंत्रता की सांस लेने का मौका इस दर्शन के माध्यम से मिला था। स्वतंन्त्र व्यक्ति "स्व" में निहित अपूर्व शक्ति की अनिर्वचनीय संभावनाओं के सदुपयोग का अवसर भी हासिल कर सकता है। व्यक्ति जीवन में परिवर्तन की नयी-नयी दिशाएँ निर्धारित करने में भी व्यक्तिवाद की अपनी भूमिका है। उसका यही दावा है कि यद्यपि व्यक्ति सामाजिक बन्धनों में जकडा हुआ है, फिर भी उसे अपने बन्धनों को तोडना होगा। लीक से परे जाना होगा। जब व्यक्ति को स्वयं ऊर्ध्वोन्मुख होने का अवसर मिलता है तब वह परंपरा के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए उद्यत होता है। उसे सफलता भी हासिल होती है। वास्तव में व्यक्ति की महिमा की प्रतिष्ठा ही व्यक्तिवाद को ऊर्ध्वोन्मुखी

चेतना से भरपूर रहने का सुअवसर प्रदान करता है । व्यक्तिवाद ने व्यक्ति में सुप्त पड़ी विद्रोही भावना को जगाया था । उसमें परंपरा के प्रति निषेध का स्वर हमेशा मुखरित रहा है । इसने व्यक्ति को प्रगति के अनंत आयामों की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित भी किया है ।

संक्षेपत: व्यक्तिवाद पूर्णत: व्यक्ति के स्व की प्रतिष्ठा का दर्शन है । इसमें समाज के नियमों व अधिकारों के कटघरे से बाहर व्यक्ति की एक अलग पहचान की कोशिश हुई है । जैसे सूचित किया गया कि इसकी धुरी संपूर्ण स्वतंत्रता है । इसने यह साबित किया कि स्वतंत्र व्यक्ति ही समाज के लिए कुछ कर सकता है । वही समाज के हित में उपलब्ध भी हो सकता है । यों इस दर्शन के माध्यम से व्यक्ति को समाज की एक अभिन्न अद्वितीय एवं अलग इकाई की प्रतिष्ठा एवं हैसियत प्राप्त हो गयी ।

यद्यपि पश्चिम में व्यक्तिवाद की प्रतिष्ठा औद्योगिक क्रान्ति के परिणाम के रूप में हुई थी फिर भी दोनों विश्वयुद्ध की विभीषिकाओं ने भी व्यक्ति को अपने अस्तित्व पर सोचने के लिए मजबूर किया था । परिवर्तन के लिए उत्सुक पश्चिम के व्यक्ति के लिए व्यक्तिवादी होना एक ज़रूरी एवं अपेक्षित कार्य था । लेकिन भारत के संदर्भ में वैसा माहौल बरकरार नहीं था यद्यपि विश्वयुद्ध का प्रभाव यहाँ भी पड़ा था । यह निस्तर्क बात है कि भारत में व्यक्तिवाद का उद्भव अवश्य पश्चिम के संपर्क

में हुआ है । लेकिन भारतीय व्यक्तिवाद ने समाज निरपेक्ष स्वार्थपरक व्यक्तिवाद को मान्यता नहीं दी है । उसने समाजोन्मुखी व्यक्तिवाद की स्वीकृति दी । यानी व्यक्ति स्वयं अपने अस्तित्व की रक्षा करके समाज के हित के लिए कार्यरत होना अपना दायित्व मानने लगा । इस प्रकार भारत के संदर्भ में व्यक्तिवाद को एक नया आयाम प्राप्त हुआ ।

भारत में व्यक्तिवाद का स्वर उस समय बुलन्द हुआ जब यहाँ आज़ादी का संघर्ष ज़ोरों पर चल रहा था । द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर कालीन भारतीय समाज पर अस्तित्वसुरक्षा का सवाल आया और तीखी सामाजिकता के खिलाफ तत्कालीन कवियों ने व्यक्ति अस्तित्व को पहचानने का अथक प्रयास भी किया । पूँजीवादी सभ्यता के विरुद्ध हुए इस अस्तित्व आन्दोलन ने यह सिद्ध किया कि समष्टि के हित के प्रति सजग प्रगतिवादी व्यक्ति की महत्ता का ह्रास हो रहा है । सन् 1942 की क्रान्ति के वातावरण में व्यक्ति अपनी सत्ता को चकनाचूर होते देख रहा था । यानी विद्वानों ने बाहरी यथार्थ से परे व्यक्ति के आन्तरिक यथार्थ को पहचानने का प्रयास किया । फलस्वरूप व्यक्तिवाद के महत्व को स्वीकार किया गया और साहित्य में इसका स्वर मुखरित होने लगा । प्रयोगवादी कविता इसका ज्वलन्त दस्तावेज़ है ।

प्रयोगवादी कविता व्यक्तिवादी कविता है । प्रगतिवादी साहित्य संस्कार के प्रति प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए प्रयोगवाद ने व्यक्ति की आन्तरिकता की तह में घुसने का महान श्रम किया और उसे एक अलग किन्तु एक अनिवार्य इकाई के रूप में प्रस्तुत भी किया ।

प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति के महत्व पर विशेष बल दिया । "नदी के द्वीप" कविता में अज्ञेय ने व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों पर विचार किया है । उनके अनुसार, व्यक्ति द्वीप के समान है जो काल रूपी नदी के बीच दृढता से अवस्थित रहता है । इससे यह आदर्श प्रस्तुत किया गया है कि व्यक्ति और समाज अलग अलग है यद्यपि इसका पारस्परिक संबन्ध अवश्य है ।

व्यक्ति अस्तित्व को पुन: प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता के बल पर समाज के मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी कवियों ने व्यक्तिवादी चेतना को प्रस्फुटित करने के लिए अथक प्रयास किया था । अज्ञेय जैसे व्यक्तिवादी कवि की रचनाओं में व्यक्ति की अस्मिता की तलाश की नवीन नवीन प्रवृत्तियों की भरमार है । तारसप्तक के कवियों ने समाज की शासन व्यवस्था से पीडित जनता के उद्गारों को अभिव्यक्त करने में कोई कसर नहीं छोडी है । इसके साथ व्यक्तिपरकता को काव्यरचना का विषय बनाकर निजी अनुभूतियों

को सशक्त रूप में व्यंजित करते हुए इन कवियों ने अपने अहं को भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया था ।

प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्तिसत्ता की प्रतिष्ठा करने के लिए वैयक्तिक शैली को अपनाया था । प्रयोगवादी कविता में चित्रित व्यक्ति एक निश्चित एवं विशेष व्यक्ति होता है । उस व्यक्ति का चरित्र अहंकेन्द्रित अन्तर्मुखी और खंडित है, अपने में निहित व्यक्ति को उसकी सारी सीमाओं के साथ प्रस्तुत करते हुए आत्मनिष्ठता के सर्वोच्च रूप का परिचय दिया गया है । अपने को अक्षुण्ण रखने के लिए व्यक्ति को अहंवादी होना पड़ता है । अतः व्यक्ति की वैयक्तिक एवं स्वतन्त्र चेतना प्रयोगवादी कविता की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति है ।

प्रयोगवादी कविता में चित्रित व्यक्ति समाज से अलग पहचान चाहता है । पर वह तो समाज से बिलकुल कटा हुआ नहीं है । वह समाज की इकाई के रूप में ही समाज में अपने अस्तित्व की मांग एवं समर्थन करता है । यानी व्यक्ति अपने अस्तित्व की मांग कर उसकी स्वीकृति चाहता है और उसके माध्यम से जीवन सौंदर्य एवं समाज से साक्षात्कार करना भी चाहता है । अतः समाज में रहते हुए भी व्यक्ति पहले अपने अस्तित्व के प्रति सचेत रहता है, बाद में ही समाज की उपस्थिति की बात आती है ।

व्यक्तिवादी प्रभाव से प्रयोगवाद में क्षणवाद को भी प्रमुखता मिली है । जीवन का प्रत्येक क्षण महत्वपूर्ण है । क्षणों के प्रवाह में रहना क्षण के आनंद को लूटना और वर्तमान में रहना क्षणवाद की विशेषतायें हैं । क्षणवाद का दावा है कि जीवन का एक आनंदमय क्षण संपूर्ण जीवन से अधिक श्रेष्ठतम होता है । अज्ञेय ने क्षण की महत्ता को अंकित करने में गौरव का अनुभव किया है । दरअसल कवि को संवेदनाओं के जिस क्षण में मनोवैज्ञानिक सत्यों का साक्षात्कार होता है उस क्षण को पूर्ण निश्चलता के साथ पाठकों और श्रोताओं के लिए संप्रेषित कर देना उनका परम कर्तव्य है । क्षण का आग्रह क्षणिकता का आग्रह नहीं है ; अनुभूति की प्राथमिकता का आग्रह है । क्षण की अद्वितीयता की स्वीकृति और उसको भरपूर जीना क्षणवादियों की अहमियत है ।

व्यक्तिवादी चेतना के संदर्भ में प्रयोगवादी कविता की सर्वाधिक चर्चित प्रवृत्ति बौद्धिकता है । बदलते परिवेश में भावबोध अधिक सूक्ष्म होने के कारण अनुभूतियाँ जटिलतम बनती गयी है । वैज्ञानिक युग का प्रभाव भी इन कवियों पर पड़ा है । इसलिए अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के संदर्भ में बौद्धिकता का समावेश स्वाभाविक है । प्रयोगवादी कवियों की मान्यता है कि बुद्धि के अभाव में कविता युग की मेधा को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम नहीं होगी । फिर भी काव्य की लयात्मकता में कोई भी कमी नहीं हुई है । यद्यपि नवीनता की खोज में प्रयोगवादी कवियों ने रागतत्व की एक हद तक उपेक्षा की है, फिर भी उन्होंने युग के अनुकूल ही अपनी कविताओं में बौद्धिकता को समेटने का प्रयास किया है ।

प्रयोगवादी कवियों ने अस्तित्ववादी दर्शन-जो व्यक्ति की अहमियत को सर्वोच्च महत्व देता है - के प्रभाव के कारण अनास्था, कुण्ठा, पीडा, पराजय आदि वैयक्तिक भावनाओं को अपनी कविता में स्थान दिया है । इनकी अभिव्यक्ति प्राय: सभी प्रयोगवादी कवियों ने की है । युगीन परिवेश का असर भी कवियों पर पडा था । औद्योगीकरण के हेतु परिवार का विघटन हो रहा था । शहरीकरण, मशीनीकरण जैसे नवीन सामाजिक माहौल से साधारण जनता निराश एवं पीडित हो रही थी । सन् 1942 की क्रांति से उद्भूत जटिल समस्याओं के कारण व्यक्ति मन में जो धक्का लगा उसने व्यक्ति को झकझोर कर दिया था । उसका मन, निराशा, दर्द, घुटन और आकांक्षा आदि भावनाओं से विकल भी हो गया था । प्रयोगवादी कवियों ने व्यक्ति मन की इन विशेषताओं को काव्य विषय बनाया और उनकी सफल अभिव्यक्ति भी दी । इसके साथ फ्रायड के प्रभाव से प्रयोगवादी कवियों ने यौन भावनाओं की खुली अभिव्यक्ति करके व्यक्ति की कुण्ठित मानसिकता को भी कविता में प्रश्रय दिया । कतिपय संदर्भों में कवियों ने अपनी निजी अनुभूतियों को भी काव्य विषय बनाया है ।

यांत्रिक सभ्यता में व्यक्ति कभी अकेला हो जाता है और उसके मन में अनेक प्रकार की कुण्ठित मनोवृत्तियाँ उद्भूत होती हैं । इस स्थिति में व्यक्ति अन्तर्मुखी हो जाता है या पशुवत आचरण करने के लिए भी प्रेरित होता है । व्यक्ति मन की इन सारी विद्रूपताओं को प्रयोगवादी कवियों ने बारीकी से विश्लेषण किया है ।

अस्तित्ववादी दर्शन की मृत्युचेतना प्रयोगवादी कवियों पर भी हावी हो रही थी । ज्यादातर कवियों ने इसकी कारगर अभिव्यक्ति भी की है । अस्तित्व संकट में पले व्यक्ति के मन में मृत्यु की चिन्ता होना स्वाभाविक ही था ।

प्रयोगवादी कवियों ने कथ्य के अनुरूप शिल्पपक्ष पर भी नवीनता दर्शाने का प्रयास किया है । उनकी दृष्टि में व्यक्ति के अनुभूत सत्यों को प्रेषित करने के लिए भाषा में शब्दों की कमी है । यानी शब्दों के सीमित अर्थवत्ता के कारण उन्होंने नये शब्दों की तलाश की और शब्दों में नया भावबोध भरने का प्रयत्न भी किया । भाषा की नवीनता सही और अनिवार्य समझे गये । कतिपय संदर्भों में रूपतत्व को महत्व देते हुए उन्होंने प्रतीकों, बिम्बों और अलंकारों के द्वारा शब्दों की फिजूलखर्ची को दूर कर दिया है । वैयक्तिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति से ही मछली, द्वीप, नदी, सागर जैसे प्रतीकों को चुनकर काव्य में नूतनता लाने का प्रयत्न भी हुआ है । शब्दों को तोड मरोडकर मुक्तछन्द में काव्य रचना करने का प्रयास प्रयोगवाद में लगातार दर्शित होता है । तुकों और अतुकों का यद्यपि उन्होंने प्रयोग किया है फिर भी अधिकतर गद्यात्मक भाषा को उन्होंने स्वीकार किया । अन्य भाषाओं से भी अनगिनत शब्दों को उन्होंने स्वीकार किया है । यों नए शिल्पविधान से इन कवियों ने काव्यभाषा को समृद्ध किया है ।

इस प्रकार प्रयोगवादी कविता में अभिव्यक्त भाव तत्व के सूक्ष्म विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस काव्यान्दोलन के केन्द्र में व्यक्तिवादी चेतना ही निहित रही है । इसकी समूची प्रवृत्तियाँ व्यक्ति-निष्ठता पर आधारित है । व्यक्ति सत्ता की प्रतिष्ठा और व्यक्ति की अहमियत की खोज सर्वत्र मौजूद है । इसने उपेक्षित व्यक्ति के आन्तरिक लोक का पर्दाफाश किया और निकट से देखा । उन्होंने व्यक्ति के आन्तरिक यथार्थ को पहचान की । साथ-ही साथ व्यक्तिगत भावनाओं को समाज के संदर्भ में व्यापक स्तर पर परखी गयीं और व्यक्तिसत्ता को समाज की अद्वितीय इकाई घोषित भी की । इतना ही नहीं व्यक्ति सत्ता पर आरोपित गलतफहमियों को दूर किया गया और उसे समाजोन्मुख कराने की भरसक कोशिश भी की गई । यानी एक हद तक व्यक्ति और समाज के आपसी संबन्धों में निहित अंतर्विरोधों को पाटने में प्रयोगवादी कवि सफल हुए । पूर्ववर्ती प्रगतिवादी कविता की अतिरंजित सामाजिकता की तुलना में व्यक्ति- समाज के संबन्धों को संतुलित करने तथा समाज में व्यक्ति की अपेक्षित अहमियत को प्रतिष्ठित कराने में भी वे सफल हुए । अपनी सीमाओं के बावजूद भी प्रयोगवादी कवियों की यह सर्जनात्मक कोशिश हिन्दी काव्य साहित्य के इतिहासमेंमोटे हरफों में अवश्य अंकित की जाएगी ।

सहायक ग्रंथ - सूची

1. अनामिका - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
   भारती भंडार लीडर प्रेस
   इलाहाबाद
   च. सं. 1963.

2. अज्ञेय काव्य की भाषा संरचना का अध्ययन - डा. निर्मला शर्मा
   भारतीय ग्रंथ निकेतन
   नयी दिल्ली
   प्र. सं. 1991.

3. अपरा - सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला
   भारती भण्डार लीडर प्रेस
   बारहवाँ सं. 1980.

4. अपराजिता - रामेश्वर शुक्ल अंचल
   इन्डियन प्रेस लिमिटेड
   प्रयाग - 1946.

5. अस्तित्ववाद दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका - डा. लालचन्द गुप्त "मंगल"
   अनुपम प्रकाशन मन्दिर
   पटियाला, प्र. सं. 1977.

6. अस्तित्ववाद और साहित्य - श्यामसुन्दर मिश्र
   अनुपम प्रकाशन मन्दिर
   पटियाला, प्र. सं. 1977.

7. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या - रामस्वरूप चतुर्वेदी
   भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
   वाराणसी, प्र. सं. 1968.

8. अज्ञेय काव्य की भाषा संरचना का अध्ययन - डा. निर्मल शर्मा
भारतीय ग्रन्थ निकेतन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1991.

9. अरी ओ करुणा प्रभामय - अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
नयी दिल्ली, ती.सं. 1989.

10. आकुल अन्तर - हरिवंशराय बच्चन
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं. 1963.

11. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि महादेवी वर्मा - सं. गंगाप्रसाद पाण्डे
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली, चौदहवाँ सं. 1979.

12. आत्मनेपद - अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
काशी, सं. 1960.

13. आधुनिक कवि और उनका काव्य - डा. दयानन्द शर्मा
अन्नपूर्णा प्रकाशन,
कानपुर, प्र.सं. 1989.

14. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डा. नामवरसिंह
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद
प्र.सं. 1990.

15. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि अज्ञेय - सं. विद्यानिवास मिश्र
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली, सं. 1988.

16. आधुनिक साहित्य की व्यक्तिवादी भूमिका - डा. बलभद्र तिवारी
नन्द किशोर एण्ड सन्ज़
वाराणसी, प्र. सं. 1962.

17. आधुनिक बोध और आधुनिकीकरण - रमेशकुन्तल मेघ
अक्षर प्रकाशन
दिल्ली, 1969.

18. आधुनिक हिन्दी कविता - सुबासकुमार
भारतीय विद्याप्रकाशन
दिल्ली, प्र. सं. 1989.

19. आधुनिक हिन्दी कविता और विचार - राजेन्द्र मोहन भटनागर
भारतीय ग्रन्थ निकेतन
नयी दिल्ली, सं. 1987.

20. अंधा युग - धर्मवीर भारती
किताब महल
इलाहाबाद, 1954.

21. आँगन के पार द्वार - अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
काशी, प्र. सं. 1961.

22. आँसू - जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार लीडर प्रेस
प्रयाग, सं. 2018 वि.

23. आधुनिक हिन्दी कविता में शिल्प - कैलाश वाजपेयी
आत्माराम एण्ड सन्स
दिल्ली -6, सं. 1963.

24. अंतरा — अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली, प्र.सं. 1975.

25. इत्यलम् — अज्ञेय
प्रतीक प्रकाशन केन्द्र
दिल्ली, प्र.सं. 1946.

26. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये — अज्ञेय
सरस्वती प्रेस
इलाहाबाद, प्र.सं. 1957.

27. कनुप्रिया — धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दिल्ली, सं. 1981.

28. कविता कालयात्रिक — डा. लक्ष्मीनारायण
प्रवीण प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1988.

29. कविता की तीसरी आँख — प्रभाकर श्रोत्रिय
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1980.

30. कविता के नए प्रतिमान — डा. नामवरसिंह
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली -2, सं. 1968.

31. कामायनी — जयशंकर प्रसाद
भारती भण्डार
इलाहाबाद, प्र.सं.सं. 2018 वि.

32. किरणबेला - रामेश्वर शुक्ल अंचल
इन्डियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग, 1941.

33. गीत फरोश - भवानी प्रसाद मिश्र
सरल प्रकाशन
दिल्ली, 1965.

34. ग्रन्थि - सुमित्रानन्दन पंत
भारती भण्डार
इलाहाबाद
द्वि.सं. सं. 2007 वि.

35. गुंजन - सुमित्रानन्दन पंत
भारती भण्डार लीडर प्रेस
इलाहाबाद
तेरहवाँ सं. 1975.

36. चाँद का मुँह टेढा है - गजानन माधव मुक्तिबोध
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
प्र.सं. 1964.

37. छायावादोत्तर काव्य - डा.औ.एन.मुरलीकृष्णम्मा
वाणी प्रकाशन
नयी दिल्ली, प्र.सं. 1986.

38. छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदंड एवं स्वरूप - डा.कैलाशनाथ उपाध्याय
राजस्थानी ग्रन्थागार
जोधपुर, प्र.सु. 1990.

39. ठंडा लोहा - धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दिल्ली, तृ.सं. 1976.

40. तार सप्तक - सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दिल्ली, द्वि.सं. 1966.

41. तीसरा सप्तक - सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
दिल्ली, 1967.

42. त्रिशंकु - अज्ञेय
सरस्वती प्रेस बनारस
सं. 1954 ई.

43. दूसरा सप्तक - सं. अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
द्वि.सं. 1970.

44. धूप के धान - गिरिजाकुमार माथुर
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
काशी, द्वि.सं. 1958.

45. नया हिन्दी काव्य - डा. शिवकुमार मिश्र
अनुसन्धान प्रकाशन
कानपुर, 1962.

46. नयी कविता रचना प्रक्रिया - डा. ओम प्रकाश अवस्थी
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली - 2.

47. नयी कविता कथ्य और विमर्श - डा. अरुणकुमार
चित्रलेखा प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं. 1988.

48. नयी रचना और रचनाकार - डा. दयानन्द शर्मा
अन्नपूर्ण प्रकाशन
कानपुर, प्र.सं. 1990.

49. पल्लव - सुमित्रानंदन पंत
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली, 1967.

50. पूर्वा - अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली, प्र.सं. 1965.

51. प्रयोगवादी काव्यधारा - डा. रमाशंकर तिवारी
चौखम्बा विद्याभवन
वाराणसी, प्र.सं. 1964.

52. प्रभात फेरी - नरेन्द्र शर्मा
किताब महल
इलाहाबाद, प्र.सं. 1953.

53. प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी - रामेश्वर शुक्ल अंचल
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी, प्र.सं. 1964.

54. प्रयोगवादी काव्य - डा. पवनकुमार मिश्र
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
भोपाल, प्र.सं. 1977.

55. प्रयोगवाद और नई कविता - डा. शम्भुनाथ सिंह
समकालीन प्रकाशन
वाराणसी, 1966.

56. प्रयोगवाद और अज्ञेय - डा. शैल सिन्हा
अशोक प्रकाशन
दिल्ली -6, प्र.सं. 1969.

57. प्रवासी के गीत - नरेन्द्र शर्मा
भारती भंडार लीडर प्रेस
प्रयाग
चतुर्थ सं. सं:2009 वि.

58. भारत-भारती - मैथिली शरण गुप्त
साहित्य सदन
चिरगाँव
झाँसी, सं: 2020 वि.

59. मधुबाला - हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली, दसवाँ सं. 1962.

60. मुक्तासंग - डा. सुभाष चौधरी
आधुनिक पुस्तक उद्योग
नई दिल्ली, सं. 1993.

61. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा. उदयभानु सिंह
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ, सं. 2008 वि.

62. मिलन यामिनी - हरिवंशराय बच्चन
राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली, द्वि.सं. 1961.

63. यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त
साहित्य सदन
चिरगाँव, सं. 2031.

64. युग कवि निराला - राममूर्ति शर्मा
साहित्य निकेतन
कानपुर, प्र.सं. 1970

65. यूरोपीय दर्शन - पं. रमावतार वर्मा
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् सम्मेलन
भवन, पटना, द्व.सं. 1952.

66. विराम चिह्न - रामेश्वर शुक्ल अंचल
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी, प्र.सं. 1947.

67. विविध साहित्यिक वाद - रामसजन पाण्डेय
अभिनव प्रकाशन
रोहतक, प्र.सं. 1990.

68. वीणा ग्रन्थि - पंत
भारती भण्डार
इलाहाबाद, द्वि.सं. सं: 2007 वि.

69. समाज का कायाकल्प - विद्यामार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत
वेदवाचस्पति
आर्य प्रकाशन मण्डल
दिल्ली, प्र.सं. 1984.

70. सन्धिनी - महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, प्र.सं. 1965.

71. साकेत - मैथिली शरण गुप्त
साहित्य सदन
चिरगाँव, सं. 2019.

72. सागर मुद्रा - अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज़
दिल्ली, प्र.सं. 1970.

73. सान्ध्यगीत - महादेवी वर्मा
भारती भण्डार
इलाहाबाद, छठा सं. सं:2019 वि.

74. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध - महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, सं. 1962.

75. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी, उन्नीसवाँ सं. सं: 2038 वि

76. हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. नगेन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली, 1996.

77. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-13 - लक्ष्मीनारायण "संधांशु"
नागरी प्रचारिणी सभा
काशी, सं. 2022 वि

78. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - डॉ. नगेन्द्र
विनोद पुस्तक मन्दिर
आगरा, 1972.

79. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी - नन्द दुलारे वाजपेयी
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद, सं. 1977.

80. हिन्दी नवलेखन - डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
वाराणसी, प्र.सं. 1960.

81. हिन्दुस्तान की कहानी - जवाहरलाल नेहरू
(अनु.) रामचन्द्र टंडन
सस्ता साहित्य मण्डल, 1947.

82. हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि - मुरारीलाल शर्मा "सुरस"
दिनमान प्रकाशन
दिल्ली, प्र.सं. 1986.

83. हिन्दी के प्रयोगशील कविता और उसका प्रेरणास्रोत - श्रीराम नागर
सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ
गुजरात, प्र.सं. 1966.

कोश
---

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-2 - सं. धीरेन्द्र वर्मा
ज्ञानमण्डल लिमिटेड
वाराणसी, द्वि.सं. सं: 2020

2. हिन्दी विश्वकोश - श्री नगेन्द्रनाथ बसु (सं)
नगेन्द्रनाथ बसु और विश्वनाथ बसु
नं. 9, विश्वकोश लेन
बाग बज़ार, कलकत्ता ।

अंग्रेज़ी की पुस्तकें

1. The Adventure of Criticism - K.K.Sreenivasa Iyenger
Sterling Publishers (P) Ltd,
1985.

2. Being and Nothingness - Jean Paul Sartre
Methuen & Co. Ltd
London, 1957.

3. Being and Time - Martin Heidegger
S.C.M.Press Ltd.
London, 1962.

4. Christian Sociology - Msgr.Victor San Miguel OCD
St.Joseph's Pontifical
Institute of Theology &
Philosophy,
Alwaye - 972.

5. Christian Existentialism - Nicolai Berdyaev
George Allen and Unwin Ltd
London, 1965.

6. Existentialism - Paul Foulquie
Debson Books Ltd
London
II Impression, 1946.

7. Existentialism - Jean Paul Sartre
The Philosophical Library
Newyork, 1947.

8. Existentialism from Dostovsky to Sartre - Edwalter Kaufmann
Meridian Books
New York, 1957.

9. Existentialism and Humanism - Jean Paul Sartre
Methuen and Co.Ltd
London, 1957.

10. Existentialism, for and against - Paul Roubiczek
Cambridge University Press
London, 1961.

11. Existentialism and Modern Predicament - F.H.Heinmann
Adam Charles Black
London, 1958.

12. Existentialism and Human Emotions - Jean Paul Sartre
The Philosophical Library
New York, 1947.

13. Existence and Being - Martin Heidegger
S.C.M.Press Ltd
London, 1962.

14. Existentialist concepts and the Hindi Philosophical systems - G.Sreenivasan
Udayana Publications
Allahabad, 1967.

15. The Failure of Individualism- R.S.Divane
Richview Press
Dubin, 1948.

16. The French Revolution - Hilaire Belloc
Williams and Nonstate Ltd
London, 1927.

17. Glimpses of World History - Jawaharlal Nehru
Lind say Drummond Ltd
London, 1934.

18. The Ground work of British History - Warner and Marten
Blackie and Sons Ltd
Old Bailey
London.

19. Gaudier-Brzeska - A Memoir - Ezra Pound
New York, 1970.

20. Good News New Testament - St.Mark
American Bible Society
New York, 1976.

21. A History of Europe - H.A.L.Fisher
Surjeet Publications
I Edn. New Delhi, 1981.

22. History of Aesthetic - Bernard Bosanquet
Allen and unwin
London, 1949.

23. History of Philosophy - Frank Thilly
Central Book Depot
Allahabad
III Edn. 1975.

24. A History of Philosophy - Fuller/M C Murrin
Oxford I B H Publishing Co
New Delhi, 1955.

25. A History of Political Theory - George.H.Sabine
Mohan Primlani
Oxford I B H Publishing Co
New Delhi, 1973.

26. Individual and commercial Revolutions in Great Britain during Ninteenth Century. - L.C.A.Knowles
Rout Ledge and Kegan Paul Ltd
London, 1921.

27. Individualism - Steven Lukas
Oxford Basil Blackwell
London, 1973.

28. An introduction to Existentialism - Robert G.Olson
Dover Publications
Inc. New York, 1962.

29. Manual of Psychology - S.C.Dutta

30. Modern Political Theory - C.E.M.Jaud
Oxford clarendon Press
London, 1953.

31. Modern France - Andre Lebon
T.Fisher Unwin Ltd
London, 1920.

32. Myth of Sisyphus - Albert Camus
Hamish Hamilton
London, 1955.

33. Nausea - Jean Paul Sartre
Hamish Hamilton
London, 1960.

34. Political and Cultural History of Modern Europe - C.J.H.Hayes
The MC Millan Co of canad
New York, 1948.

35. Philosophy of Karl Jaspers - Paul Arther Schilpp
Tudor Publishing Co
New York, 1957.

36. The Plague - Albert Camus
Hamish Hamilton
London, 1960.

37. Principles of Political Science - A.C.Kapur
S.Chand and Co. Ltd
New Delhi, 1986.

38. The rise of the Novel - Ian Watt
Chatto and Windus Ltd
London, 1967.

39. Six Extentialist Thinkers - H.J.Blackham
Harper and Brothers
New York, 1959.

40. Situations - Jean Paul Sartre
Hamish Hamilton
London, 1965.

41. Dictionery
The Universal Dictionery of English Language - Henry Cecil Wyld
The Waverley Book Company
London, 1961.

42. Encyclopaedia -
Americana Vol.I - Paul C.Bowers
Grolier Incorporated
Danbury, 1988.

Americana Vol.15 - John William Ward
Grolier Incorporated
Danbury, 1968.

43. Encyclopaedia -
Britanica Vol.8 - William D Halsey
MC Millan Educational Co.
London.

Britanica Vol.12 - William D Halsey
M C Millan Educational Co.
London, 1990.

44. Periodicals -
Red Star - Albert Einstein, 1946.